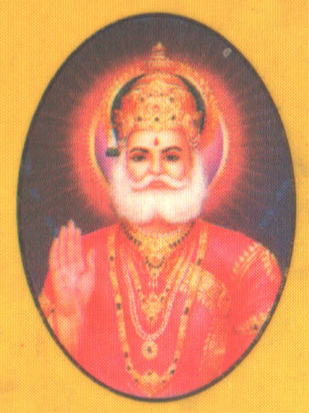

# राष्ट्र की वैश्य विभूतियाँ

( भारत सरकार ने जिन पर समय-समय पर डाक टिकट जारी किये )

सूबेसिंह गुप्ता ✦ चन्द्रमोहन गुप्ता

# राष्ट्र की वैश्य विभूतियाँ

( भारत सरकार ने जिन पर समय-समय पर डाक टिकट जारी किये )

लेखक : सुबेसिंह गुप्ता
चन्द्रमोहन गुप्ता

सम्पादन : ओमप्रकाश अग्रवाल

**प्रकाशक**
**पंचमधाम प्रकाशन ट्रस्ट**
जी पी-32, मौर्य एन्कलेव
पीतमपुरा, दिल्ली-110088
दूरभाष : 27323078

# राष्ट्र की वैश्य विभूतियाँ

मूल्य : 60/-

सुबे सिंह गुप्ता
चन्द्र मोहन गुप्ता

भारत में सन् 2007 में प्रकाशित

**पंचमधाम प्रकाशन ट्रस्ट**
जी पी-32, मौर्य एन्कलेव
पीतमपुरा, दिल्ली-110088
दूरभाष : 23323078

शब्द सज्जा : पवनदीप प्रिन्टर्स
21/33, मास्टर लक्ष्मी नारायण मार्ग, शक्ति नगर, दिल्ली-7

राष्ट्र की वैश्य विभूतियाँ

**निज पूर्वजों के सद्गुणों का गर्व जो रखती नहीं ।**
**वह जाति जीवित जातियों में रह सकती नहीं ।।**
**—राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त**

यह पुस्तक अग्रगौरव संस्थापक मास्टर लक्ष्मीनारायण अग्रवाल जी की 107वीं जयंती के अवसर पर सादर समर्पित है ।

# प्रस्तावना

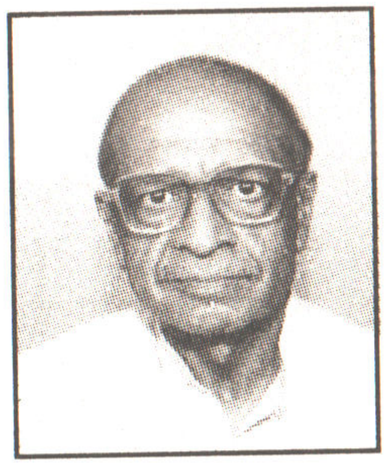

प्राचीनकाल से प्रकृति का यह नियम रहा है कि, जो किसी से कुछ लेता है उसे किसी भी प्रकार से लौटाना भी पड़ता है। कुछ व्यक्ति विशेष प्रवृत्ति वाले होते हैं जो जीवनभर देते ही रहते हैं और उसके लिए कुछ भी प्राप्त करने की इच्छा भी नहीं रखते। ऐसे व्यक्ति समाज में विशेष स्थान रखते हैं और उनको कालांतर तक स्मरण किया जाता है। ऐसे व्यक्ति हर काल और समय में होते हैं। कुछ व्यक्ति जब अपने-अपने क्षेत्र में विशेष उपलब्धियों के कारण सरकार द्वारा राष्ट्र की ओर से सम्मानित किये जाते हैं उन्हें विशिष्ट स्थान प्राप्त होता है। इस पुस्तक में लेखक ने उन महान विभूतियों में से कुछ चयनित विभूतियों का संक्षिप्त में परिचय दिया है। ये सभी विभूतियां वैश्य समाज की हैं। लेखक का इन विभूतियों का चयन कर इनका परिचय (पुस्तक रूप) देने के पीछे यही उद्देश्य दिखाई देता है कि समाज के लोग इनके व्यक्तित्व व कृतित्व से प्रेरणा प्राप्त कर सकें। इस पुस्तक में ऐसी अनूठी विभूतियों का परिचय दिया गया है, जिन्होंने अपना सारा जीवन समाज और राष्ट्र की सेवा में समर्पित किया। उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र में निपुणता ओर विशेषता प्राप्त की। महाराजा अग्रसेन संसार भर के करोड़ों अग्रवालों के पूज्यनीय और असीम श्रद्धा के पात्र हैं। उनके सिद्धान्तों को हजारों वर्षों से अनुसरण कर सेवा-परोपकार का आदर्श प्रस्तुत किया जाता रहा है। महात्मा गाँधी का भी संसार सदैव ऋणी रहेगा। उनके सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त हर काल और युग में मान्य रहेंगे। कुछ अन्य जानी-पहचानी विभूतियों के अतिरिक्त इस पुस्तक में उन विभूतियों को शामिल किया गया है जिनके नाम आम पाठकों ने कभी न ही पढ़े होंगे, न ही सुने होंगे। उनमें काशीप्रसाद जायसवाल, ज्योतिप्रसाद अगरवाल, ला. दीनदयाल एवं जवाहर लाल दर्डा विशेष हैं। पाठक उनके बारे में भी जानकारी लें और स्वयं ही फैसला करें कि उन्होंने समाज और देश की कितनी बड़ी सेवा की थी।

लेखक श्री एस.एस. गुप्ता और श्री चन्द्रमोहन गुप्ता ने जिस परिश्रम से इस पुस्तक को तैयार किया है इसके लिए वे प्रशंसा और साधुवाद के पात्र हैं। मैं इस लेखन के लिए उन्हें बधाई देता हूँ

**शिवकुमार गोयल**

# दो शब्द

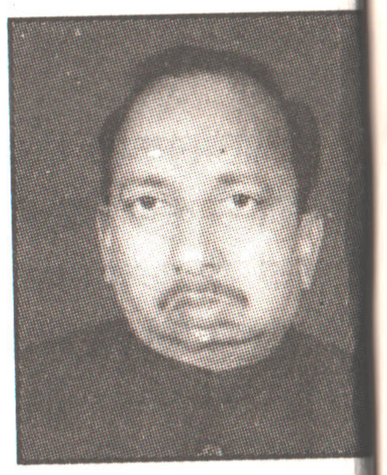

पंचमधाम प्रकाशन ट्रस्ट के संस्थापक श्री सूबेसिंह गुप्ता व अग्रोहा तीर्थ के संपादक श्री चन्द्रमोहन गुप्ता द्वारा अग्र-मंजूषा के नाम से वैश्य अग्रवाल महापुरूषों पर अब तक तीन खंड प्रकाशित किये जा चुके हैं। समय-समय पर भारत सरकार वैश्य अग्रवाल महापुरूषों पर स्मारक डाक टिकट जारी करती रहती हैं। इन महापुरूषों पर भी एक प्रकाशन की योजना लेकर दोनों महानुभावों ने मेरे से सम्पर्क किया तो मुझे अत्यधिक हार्दिक प्रसन्नता हुई। आज यह पुस्तक आपके हाथों में है। वैश्य अग्रवाल समाज को केवल धनी समाज के रूप में देखा जाता है, जो कि सत्य नहीं है। वैश्य अग्रवाल समाज ने अनेक महापुरूष दिये हैं। सरकार ने तो केवल कुछ महापुरूषों पर डाक टिकट जारी किये हैं। अग्रवाल समाज की अनेक महिलाओं ने भी राष्ट्र के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया है, लेकिन कस्तूरबा गाँधी को छोड़कर किसी भी महिला पर डाक टिकट जारी नहीं हुआ है। उदाहरण के लिए श्रीमती जानकी देवी बजाज व दिल्ली की श्रीमती पार्वती डीडवानियां का उल्लेख ही पर्याप्त है। इसी तरह 1857 की क्रान्ति में अपना सब कुछ लुटा देने वाले लाला हुक्मचंद जैन, रामजीदास गुड़वाले, मटोलदास अग्रवाल व झनकूमल सिंहल इसी समाज की देन हैं। भारत सरकार को चाहिए कि इन महापुरूषों पर भी डाक टिकट जारी करें।

यह पुस्तक नई पीढ़ी के लिए विशेष लाभकारी होगी, क्योंकि वैश्य अग्रवाल समाज के उज्जवल इतिहास की पुस्तकों का बहुत अभाव है। निश्चित रूप से श्री सूबेसिंह गुप्ता व श्री चन्द्रमोहन गुप्ता इसके लिए बधाई के पात्र हैं। इस पुस्तक की भांति भविष्य में भी दोनों बंधु समाज हितैषी प्रकाशन करते रहेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है। लेकिन यह प्रकाशन तभी सार्थक होगा, जब समाज इसे अपनाये और इस तरह की पुस्तकें लाखों की संख्या में छपती रहे।

दिल्ली। गंगा दशहरा, 2064 विक्रमी!

**ओमप्रकाश अग्रवाल**



# भूमिका

बाल अग्र-मंजूषा भाग-1 एवं 2 वर्ष 2005 और उसी क्रम में भाग-3 वर्ष 2006 में प्रकाशित हुई। इन पुस्तकों से अनुभव प्राप्त हुए। इन पुस्तकों की विषयवस्तु को सराहा गया और बच्चों के लिए उपयोगी सद्साहित्य माना गया। वहीं यह देखा गया कि अग्रवाल समाज के लोग पुस्तक खरीद कर नहीं पढ़ते। जहाँ धनाढ्य वर्ग ने अपना रुतबा ऊँचा रखने के उद्देश्य से महाराजा अग्रसेन के नाम से शिक्षण संस्थानों को चला रखा है वहीं उनमें इस महापुरुष की आत्मा अनुपस्थित है। अग्रसेन के नाम वाले एक विद्यालय की वार्षिक पत्रिका का नाम 'अग्र शिखा' है परन्तु उस पत्रिका में 'अग्रसेन, अग्रोहा और अग्रवालों' के विषय में कोई अन्य शब्द देखने को नहीं आया! इसे क्या कहा जा सकता है। यह स्पष्टतया समाज के साथ धोखा और उच्छृंख्लता ही है। उनकी इस मानसिकता में परिवर्तन होने से ही समाज की सच्ची सेवा हो सकेगी।

इस पुस्तक में वैश्य समाज की उन विभूतियों को शामिल किया गया है जिन्होंने देश और समाज की सेवा में जीवन को समर्पित किया। भारत सरकार ने भी उनको सम्मान देने के उद्देश्य से डाक टिकट जारी की। इस पुस्तक की विषय-वस्तु श्री चन्द्र मोहन गुप्ता की है।

समय-समय पर जब भी कठिनाइयाँ सामने आईं सर्वश्री ओमप्रकाश अग्रवाल, सम्पादक, युवा अग्रवाल, घनश्यामदास गुप्ता (भोपाल वाले), डॉ. विष्णुचन्द्र गुप्ता और राजेशकुमार गुप्ता (मैं. कैपिटल स्टाम्प कं. नई दिल्ली), ने बहुमूल्य परामर्श देकर अनुग्रहित किया। उनके पथ प्रदर्शन से पुस्तक में कई सुधार हुए। इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

इस पुस्तक की उपयोगिता और विषय-वस्तु की महत्ता के विषय में श्री शिव कुमार गोयल ने 'प्रस्तावना' में और श्री ओम प्रकाश अग्रवाल ने 'दो शब्द' शीर्षक में प्रकाश डाला है। अत: इस विषय में लिखना उनके द्वारा कहे गये को दोहराना होगा जो पाठकों को रूचिकर नहीं होगा। विभूतियों के बारे में दी गई सामग्री विभिन्न साधनों से प्राप्त की गई है। ये विभूतियाँ वे राजनैतिक व्यक्ति नहीं है जिनके विषय में अनेक व्यक्ति लिख देते हैं। उनमें बहुत सारी विभूतियाँ सेवा करती रहीं और उनकी उपयोगिता का पता तब चला जब विधाता ने अपने पास बुला लिया। इस परिस्थिति में जो भी मिला इस पुस्तक में शामिल कर लिया गया है। कई मामलों में शब्दों को बदल देने का प्रयास नहीं किया है जो साधारणतया कई लेखक करते हैं।

इसलिए कि तथ्यों में परिवर्तन करना उचित नहीं था। मैं उन व्यक्तियों का बिना नाम लिए आभार व्यक्त करता हूँ। क्योंकि यह समाज के लिए पुस्तक है उनका भी तो उद्देश्य समाज की सेवा करना था। इस कारण उसे निस्संकोच प्रयोग किया है।

मुर्धन्य साहित्यकार श्री शिवकुमार गोयल जी ने अपने व्यस्त समय में से इस पुस्तक के लिए 'प्रस्तावना' लिख दी, मैं उनके लिए आभारी हूँ। भाई ओम प्रकाश अग्रवाल 'युवा अग्रवाल' के सम्पादन के साथ समाज के अन्य कार्यों में लगे हैं। उनके साथ 'दो शब्द' शीर्षक में जो लिखा है वह प्रशंसनीय ही नहीं वरन् एक आदर्श है कि समाज की सेवा के लिए वे कितने तत्पर रहते हैं।

एक और विभूति श्रीमति स्वराजमणि अग्रवाल को नहीं भुलाया जा सकता। वे लेखक की कृतियों को सजाने और संवारने में अपना बहुमूल्य योगदान देती हैं। उनके इस प्रयास से लेखक में आत्मविश्वास का जागरण हुआ है और वे यह चौथी कृति पाठकों को देने में सफल हुए हैं। हम उनको इसका आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में, कोई लेखन कार्य त्रुटि-विहिन नहीं कहा जा सकता। मैं इस पुस्तक में भी पाठक की पैनी निगाहों द्वारा त्रुटियाँ पाये जाने की सम्भावना को नकार नहीं सकता। अत: मैं उनसे निवेदन करूँगा कि इसके लिए हमें क्षमा प्रदान करें।

**सूबेसिंह गुप्ता**
**चन्द्रमोहन गुप्ता**



# अनुक्रमणिका


| | | |
|---|---|---|
| 1. | राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी | 13 |
| 2. | कस्तूरबा गाँधी | 17 |
| 3. | पंजाब केसरी लाला लाजपत राय | 20 |
| 4. | डॉ. भगवान दास | 22 |
| 5. | जमनालाल बजाज | 24 |
| 6. | काशी विद्यापीठ (1921-71) | 26 |
| 7. | राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त | 28 |
| 8. | भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द्र | 30 |
| 9. | महाराजा अग्रसेन | 32 |
| 10. | सर गंगाराम | 35 |
| 11. | डॉ. राममनोहर लोहिया | 38 |
| 12. | डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल | 40 |
| 13. | घनश्याम दास बिड़ला | 41 |
| 14. | डॉ. राजा सर एम.ए. मुत्तैया चेट्टियार | 43 |
| 15. | मोहनलाल सुखाड़िया | 45 |
| 16. | राष्ट्ररत्न बाबू शिवप्रसाद गुप्त | 46 |
| 17. | श्रीप्रकाश | 49 |
| 18. | जयशंकर प्रसाद | 52 |
| 19. | हनुमानप्रसाद पोद्दार | 55 |
| 20. | श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' | 58 |
| 21. | सन्त कवि सुन्दरदास | 60 |
| 22. | डॉ. जगदीश चन्द्र जैन | 62 |

| | | |
|---|---|---|
| 23. | आचार्य तुलसी | 63 |
| 24. | द हिन्दुस्तान टाइम्स (1924-99) | 66 |
| 25. | पोट्टि श्रीरामुलु | 68 |
| 26. | डी.एन. जटिया | 69 |
| 27. | भामाशाह | 71 |
| 28. | जैन प्रतीक | 73 |
| 29. | चन्द्रगुप्त मौर्य | 75 |
| 30. | बृजलाल बियाणी | 77 |
| 31. | बाबू गुलाबराय | 80 |
| 32. | आनन्द ऋषिजी | 83 |
| 33. | नरेन्द्र मोहन | 85 |
| 34. | डॉ. इन्द्र चन्द्र शास्त्री | 87 |
| 35. | ज्योति प्रसाद अगरवाला | 89 |
| 36. | आचार्य भिक्षु | 91 |
| 37. | वालचंद हीराचन्द | 93 |
| 38. | पद्मपत सिंहानिया | 95 |
| 39. | ए.एम.एस. मुरूगप्पा चेट्टियार | 96 |
| 40. | जवाहर लाल दर्डा | 98 |
| 41. | लाला दीनदयाल | 99 |
| 42. | डॉ. आर.एम. अलगप्पू चेट्टियार | 100 |
| 43. | सूची | 102 |




# राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी

*भारत सरकार ने महात्मा गाँधी जी के सम्मान में सर्व प्रथम 15–8–1948 को (i) 1½ आना (अर्थात् 10 पैसे) की 15,950 डाक टिकटें (ii) 3½ आना (अर्थात 20 पैसे) की 1350 डाक टिकटें (iii) 12 आना (अर्थात् 75 पैसे) की 250 डाक टिकटें (iv) 10 रूपये की केवल 100 डाक टिकटें जारी की।*

ये टिकटें किन्हीं गिने-चुने व्यक्तियों के पास संग्रहित हैं। जिनका मूल्य वर्तमान में लाखों रूपये है और जो हमारी बहुत बड़ी राष्ट्रीय धरोहर है। भारत सरकार ने और दुनिया की कई सरकारों ने उनके सम्मान में 500 (पांच सौ) से अधिक विभिन्न प्रकार की डाक टिकटें जारी की तथा अब भी निरन्तर छप रही हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ही एक ऐसी विभूति हैं जिनको देश और विदेश में इस प्रकार का अद्वितीय सम्मान प्राप्त हुआ है। संसार के लगभग 70 देशों ने महात्मा गाँधी की स्मृति में डाक टिकट जारी किए हैं।

महात्मा गांधीजी का पूरा नाम मोहनदास कर्मचन्द गाँधी था उनका जन्म गुजरात राज्य के काठियावाड जिले के पोरबन्दर नगर में आश्विन वदी 12 सम्वत् 1925 तदानुसार 2 अक्टूबर 1869 को हुआ था। इनके पिताजी का नाम कर्मचन्द गाँधी और माताजी का नाम पुतलीबाई था। गाँधी परिवार वैश्यों की उपजाति है वे मोढेरा गाँव से पलायन करके पोरबन्दर आकर बस गये थे इसलिए वे मोढवणिक कहलाये। गुजराती भाषा में पंसारी को गाँधी कहते हैं। गुजरात-सौराष्ट्र में जड़ी-बूटी, नमक मसाले या हल्दी, फिटकरी आदि बेचने वाले को भी गाँधी कहते हैं। इसमें धर्म और जाति से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

महात्मा गाँधी तीन भाई और एक बहन में सबसे छोटे थे। एक भाई का नाम लक्ष्मीदास (दूसरा नाम कालीदास), दूसरे का नाम करसन गाँधी और बहन का नाम रलियात बहन जिसको सभी गोकी फइबा कहते थे। महात्मा गाँधी का बहन की भाँति घरेलु नाम 'मोनिया' था। महात्मा गाँधी की आरम्भिक शिक्षा धुलिशालों में हुई। क्योंकि मिट्टी की धूल पर अक्षर बनाकर सिखाया जाता था इसलिए धूलिशाला नाम पड़ा था। आगे की शिक्षा राजकोट नगर में प्राप्त की। उनका 13 वर्ष

की आयु में ही कस्तूरबा बाई से विवाह हो गया था। उन दिनों रूढिग्रस्त समाज में समुद्र यात्रा को दुराचरण माना जाता था। ऐसे विरोध के बावजूद वे बैरिस्ट्री की शिक्षा के लिए इंग्लैंड गये। 10 जून 1891 को उनका बैरिस्टर के रूप में पंजीकरण हो जाने के बाद 11 जून 1891 को स्वदेश के लिए रवाना हुए। आरम्भ में वकालत के मामले में असफल रहे। दादा अबदुल्ला सेठ के कोर्ट केस के सिलसिले में दक्षिणी अफ्रीका 1893 में पहुँचे। यहाँ अंग्रेज काले निवासियों से पक्षपातपूर्ण व्यवहार करते थे। गांधीजी को भी प्रथम श्रेणी का टिकट होने के बावजूद रेलगाड़ी से सामान के साथ उतार दिया गया। घोड़ा गाड़ी में सफर करने से मना कर दिया गया। दक्षिणी अफ्रीका में रहने के दौरान भारत से लाये गये श्रमिकों की हालत जानने का अवसर मिला। इस विषय में भारत लौट आने पर पूरा विवरण प्रकाशित किया। वह पुस्तिका **'ग्रीन बुक'** के नाम से विख्यात हुई। इस विषय में गाँधी जी ने अनेक जनसभा में भाषण भी दिये। दक्षिणी अफ्रीका के समाचार पत्रों ने उन पर समाचार बढ़ा-चढ़ाकर दिये। गांधीजी को नाटल से टेलीग्राम मिला इससे वे तुरन्त दक्षिणी अफ्रीका के लिए चल दिये। समाचार पत्रों ने गांधीजी के आगमन का समाचार प्रमुखता से छापा। बन्दरगाह से बाहर आने पर उन पर भड़के हुए अंग्रेजों ने आक्रमण किया। पुलिस ने आकर उनको अधमरी हालत में बचाया। दक्षिणी अफ्रीका की सरकार ने एक कानून बनाये जाने की घोषणा की थी जिसके अनुसार भारतीयों को निर्वाचन के अयोग्य करना था। गाँधी ने इस प्रश्न को स्थानीय सरकार और इंग्लैंड साम्राज्य के साथ उठाया। इससे वह कानून नहीं बना। गांधीजी तीसरी बार 1902 में दक्षिणी अफ्रीका गये। इस बार भी टेलीग्राम द्वारा उनको बुलाया गया था। सरकार ने ईसाई मत से विवाह के अतिरिक्त अन्य धर्मों के अनुसार विवाहों को गैरकानूनी घोषित कर दिया। भारतीयों पर 3 (तीन) पौंड का टैक्स लगाने के साथ अन्य नसलवादी नियम लागू करके स्थिति को विकट बना दिया था। गांधीजी ने उनका मुकाबला करने के लिए वहाँ लम्बे समय तक रहने का फैसला किया। जोहनसवर्ग में कार्यालय खोला और फिनिक्स आश्रम स्थापित किया। वह डरबन शहर से 14 मील दूर था। यहाँ **'इंडियन ओपिनियन'** नामक साप्ताहिक समाचार पत्र स्थापित किया। जिसके द्वारा और जनसभाओं में भाषणों में सरकार से टकराने में खतरों और कष्टों से भारतीयों को अवगत करवाया। निश्चित समय पर हजारों लोगों ने भाग लिया जिसमें किसी प्रकार की हिंसा नहीं करने का आदेश था। इसी समय इसे 'सत्याग्रह' नाम दिया गया। 9-11-1913 को जुलूस करते हुए 4 दिन में 3 बार गिरफ्तार किये गये और यहीं पर गांधीजी पर मुकद्दमा चलाकर तीन महीने का कारवास दिया गया।

इंग्लैंड में शासन में परिवर्तन हुआ। नये ब्रिटिश सचिव ने महात्मा गाँधी





की मांगों को उचित माना और दक्षिणी अफ्रीका की सरकार को उनको स्वीकार कर लेने के आदेश दिये। इस प्रकार सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को राहत मिली और गांधीजी का अफ्रीका आने का उद्देश्य पूरा हुआ। वे 9-1-1915 को बम्बई पहुंचे।

महात्मा गाँधी, गोपाल कृष्ण गोखले को अपना राजनीतिक गुरू मानते थे उनकी मृत्यु होने के बाद, दिसम्बर 1916 में कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेकर राजनीतिक जीवन आरम्भ किया। राजकुमार शुक्ला के निरन्तर आग्रह पर वे नील की खेती करने वाले किसानों की समस्या को सुलझाने के लिए चम्पारन गये। योजनाबद्ध तरीके से प्रशासन के सामने मामला पेश करने से सफलता मिली। चम्पारन में ही सूचना मिली कि अहमदाबाद में मिलों के श्रमिकों में भारी असंतोष है यहाँ पर उन्होंने उपवास रखा। इससे मिल-मालिक मध्यस्थ नियुक्त करने के लिए सहमत हो गये। इसके बाद 1917 और 1918 के वर्ष, गांधीजी गुजरात के खेड़ा जिले में किसानों की समस्या को सुलझाने में लगे रहे।

11 नवम्बर 1918 को प्रथम महायुद्ध बन्द हुआ। इसके बाद, अंग्रेजों ने भारतीयों पर दमन और अत्याचारों को बढ़ाने के उद्देश्य से रोलेट एक्ट लागू कर दिया। इसका सारे देश में विरोध किया गया। 13 अप्रैल 1919 को जलियाँवाला गोली काण्ड हुआ। दिसम्बर 1919 में अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसमें गांधीजी ने सक्रियता से भाग लिया। इसमें सरकारी दमन की निंदा की गई। पहली अगस्त 1920 को तिलक का स्वर्गवास हो गया। अब कांग्रेस और भारतीय जनता को स्वाधीनता प्राप्ति के लिए नेतृत्व महात्मा गाँधी में दिखाई दिया। 11 सितम्बर 1920 को कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसमें नीतियों में आधारभूत परिवर्तन लाये गये। अगले नागपुर के अधिवेशन में गांधीजी ने कांग्रेस पार्टी का नया संविधान रखा और बहुत सारे नियमों में परिवर्तन हुए। बारदोली में किसानों पर अत्याचार हो रहे थे वहाँ पर सरदार-पटेल के साथ आन्दोलन चलाया। ब्रिटिश सरकार ने भारत पर अपना शासन लम्बा करने के लिए हर प्रकार के अत्याचार और दमन किये। 1922 में उनको देशद्रोह के आरोप में 6 वर्ष के कारावास की सजा दी गई। यरवदा जेल में अपेंडिसाइड का आप्रेशन किया गया। स्वास्थ्य को देखते हुए उनको 5 फरवरी 1924 को मुक्त कर दिया गया। भारत देश में ब्रिटिश वायसराय के परिवर्तन के साथ शासन की नीति में परिवर्तन होता था। महात्मा गाँधी बुराईयों का विरोध करने के लिए उपवास करते रहते थे। 3 फरवरी 1928 को साइमन कमीशन बम्बई पहुँचा जिसका भारी विरोध किया गया लाहौर में विरोध करते हुए लाठियों की चोट के कारण ला. लाजपतराय की मृत्यु हो गई। महात्मा गाँधी इंग्लैंड की सरकार के निमन्त्रण पर राउन्ड टेबल कान्फ्रेंस के लिए इंगलैण्ड गये और 18 दिसम्बर 1931 को वापिस आये। इस 84 दिन की बातचीत

का कोई परिणाम नहीं निकला। वापिस आने पर उनको गिरफ्तार कर लिया गया। साथ में कांग्रेस के अन्य नेता भी कैद में ठूंस दिये गये। कांग्रेस पार्टी को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया। सितम्बर 1932 में गाँधी को समाचार पत्रों से ज्ञात हुआ कि अल्पसंख्यकों और अछूत और दलितों को अलग से असेम्बली के सदस्य चुनने का अधिकार देने वाला कानून सरकार लागू करेगी। इसके विरुद्ध गांधीजी ने आमरण अनशन करने की घोषणा की। डॉ. अम्बेडकर की सहमति मिल जाने पर सरकार ने अछूतों और दलितों सम्बन्धी कानून में संशोधन करके लागू किया। बम्बई के कांग्रेस अधिवेशन में 'करो या मरो' प्रस्ताव पारित किया गया। इससे घबराकर सरकार ने सभी नेताओं को बन्दी बनाना शुरू कर दिया। महात्मा गाँधी और कस्तूरबा को पूना के समीप यरवदा में आगाखां पैलेस में कैद करके रखा गया था। यहाँ पर दिसम्बर 1943 में कस्तूरबा की मृत्यु हो गई। ब्रिटिश सरकार की पक्षपातपूर्ण नीति के कारण, मुस्लिम लीग को महत्त्व मिलने लगा और उसने अलग शासन की मांग करनी आरम्भ की। देश में साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे। इसी दौरान ब्रिटिश पार्लियामेंन्ट के चुनाव हुए और लेबर पार्टी की सरकार ने सत्ता सम्भाली। नये प्रधानमंत्री ने भारत को स्वाधीनता प्रदान करने की घोषणा की जिसके लिए एक कैबिनेट कमेटी भेजने का फैसला लिया। देश के विभाजन के साथ देश को स्वाधीनता मिली। महात्मा गाँधी ने साम्प्रदायिक हिंसा को रोकने के लिये उपवास किया। 15 अगस्त 1947 को देश के स्वतन्त्र होने के साथ राष्ट्रीय सरकार ने सत्ता ग्रहण की। साम्प्रदायिक हिंसा रुक तो गई परन्तु उसकी मानसिकता ने 30 जनवरी 1948 को महात्मा गाँधी की जान ले ली। इस प्रकार देश को स्वतन्त्रता दिलाने वाला उस पर कुरबानी देकर सदा के लिए विदा हो गया।

**



# डाक टिकटों के चित्र

## जो भारत सरकार ने वैश्य विभूतियों के सम्मान में जारी किये

25
भारत
INDIA
RAM MANOHAR LOHIA 1910-1967

काशी प्रसाद जायसवाल
KASHI PRASAD JAYASWAL
35
1881-1937
भारत
INDIA
1981

घनश्यामदास बिड़ला
50
1894-1983
G.D.BIRLA
भारत INDIA

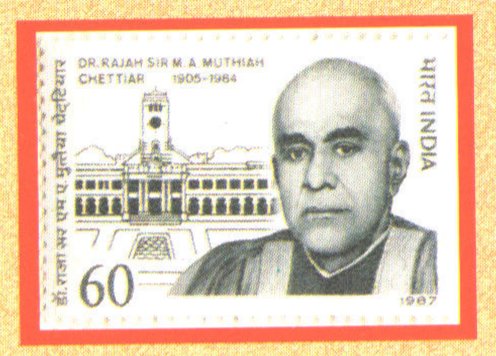
DR.RAJAH SIR M.A.MUTHIAH
CHETTIAR 1905-1984
भारत
INDIA
60
1987

मोहनलाल सुखाड़िया
MOHAN LAL SUKHADIA
भारत
INDIA
60
1989

शिवप्रसाद गुप्त
SHIVPRASAD GUPTA
भारत
INDIA
60
1988

भारत INDIA
2.00
श्रीप्रकाश SRIPRAKASH
1991

जयशङ्कर प्रसाद
JAYSHANKAR PRASAD
भारत
INDIA
2.00
1991

भारत
INDIA
1.00
हनुमान प्रसाद पोद्दार
HANUMAN PRASAD PODDAR

भारत
INDIA
1.00
कस्तूरबा ट्रस्ट - बा को श्रद्धांजलि
KASTURBA TRUST - TRIBUTE TO BA

1.00
भारत
INDIA
श्याम लाल गुप्त SHYAM LAL GUPT

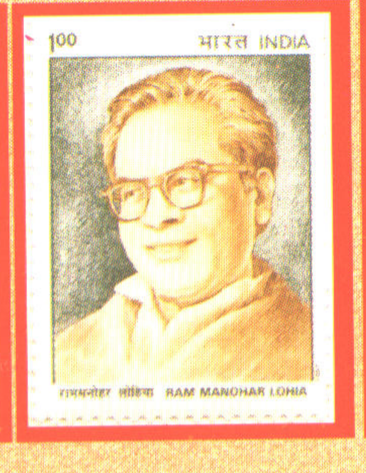
1.00
भारत INDIA
रामनोहर लोहिया RAM MANOHAR LOHIA

भारत
INDIA
2.00
संत कवि सुंदरदास
SANT KAVI SUNDERDAS 1596-1689
1997

2.00
जगदीश चन्द्र जैन
JAGDISH CHANDRA JAIN

3.00
भारत INDIA
आचार्य तुलसी ACHARYA TULSI 1914 - 1997

भारत INDIA 3.00
परस्परोपग्रहो जीवानाम्
भगवान महावीर 2600 वा जन्म कल्याणक

भारत
INDIA
द हिन्दुस्तान टाइम्स
The Hindustan Times
1.500
INDIA CELEBRATES FIRST INDEPENDENCE ANNIVERSARY
DAY OF HEART-SEARCHING AND REINFECTION
THE HINDUSTAN TIMES
Outside of the Millennium marks 50th Republic Day
1924
1999

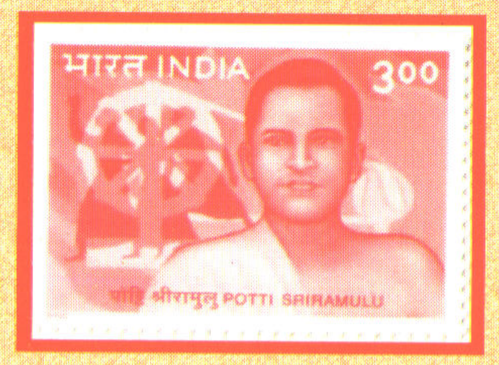
भारत INDIA
3.00
पोट्टि श्रीरामुलु POTTI SRIRAMULU

3.00
भारत
INDIA
राजा भामाशाह RAJA BHAMASHAH

4.00
चन्द्रगुप्त मौर्य
CHANDRAGUPTA MAURYA
भारत
INDIA

4.00
भारत
INDIA
ब्रजलाल बियाणी BRAJLAL BIYANI

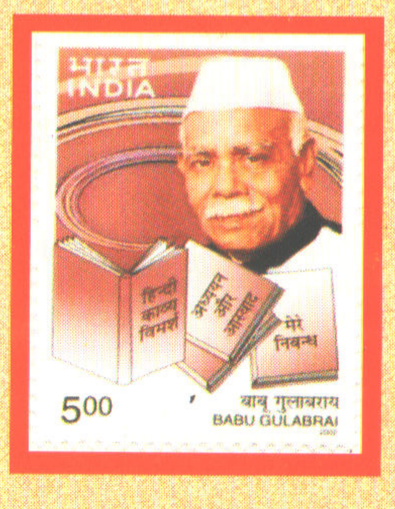
भारत
INDIA
बाबू गुलाबराय
BABU GULABRAI
5.00

भारत
INDIA
4.00
आनंद ऋषिजी महाराज ANAND RISHIJI MAHARAJ

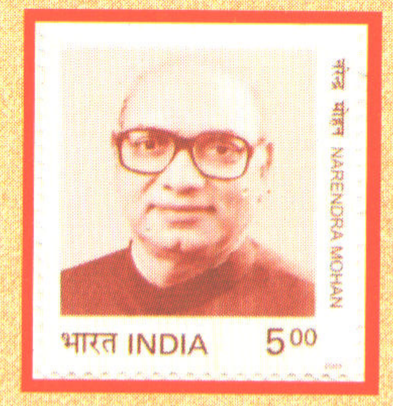
नरेन्द्र मोहन NARENDRA MOHAN
भारत INDIA
5.00

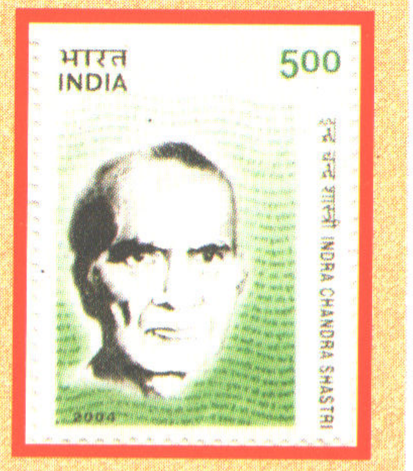
भारत
INDIA
500
इन्द्र चन्द्र शास्त्री INDRA CHANDRA SHASTRI
2004

# कस्तूरबा गाँधी

*भारत सरकार ने कस्तूरबा गाँधी जी के सम्मान में सर्वप्रथम 22–2–64 को 15 पैसे की 20 लाख, 2–10–69 को महात्मा गाँधी के साथ 20 पैसे की 80 लाख और कस्तूरबा ट्रस्ट पर 22–2–96 को 1 रूपये की 10 लाख डाक टिकटें जारी की।*

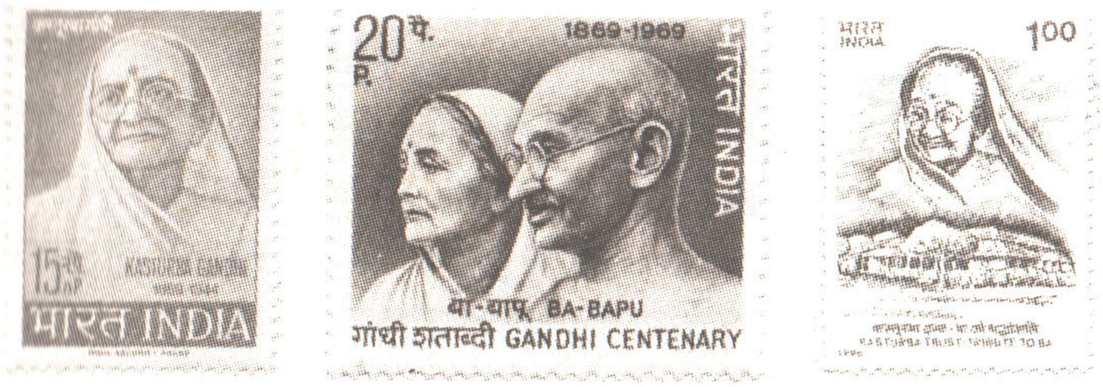


कस्तूरबा गाँधी राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी की सहभागिनी थी उनके पिताजी का नाम गोकुलदास मकनजी और माताजी का नाम श्रीमति बृजकुंवरी था। उनके पिताजी पोरबन्दर के प्रसिद्ध व्यापारी थे और महात्मा गाँधी के पिता कर्मचन्द गाँधी से घनिष्ठ मित्रता थी। उनका जन्म 1869 के अप्रैल के महीने में हुआ इस प्रकार वे अपने पति से 6 (छः) महीने आयु में बड़ी थीं। पारिवारिक सम्बन्धों के कारण कस्तूरबा की सगाई 6 या 6½ वर्ष की आयु में ही हो गई थी और वर्षों बाद 13 वर्ष की आयु में विवाह हुआ। उस समय लड़कियों को स्कूल नहीं भेजा जाता था इसलिए वे अशिक्षित और निरक्षर थीं।

समाज में पुरुष प्रधानता के रिवाजों के अनुसार, कस्तूरबा को विवाह के पश्चात् पतित्व का अधिकार और पर्दा प्रथा को सहना पड़ा। महत्मा गाँधी की इंग्लैंड में शिक्षा और दक्षिणी अफ्रीका में मुकद्दमें के लिए जाने के समय, कस्तूरबा राजकोट में पति के घर रही। वे बहुत गम्भीर और परिश्रमी प्रकृति वाली महिला थी और महात्मा गाँधी के जीवन में मजबूत आधार और सहायक सिद्ध हुई। उनकी जेठानी जब घंटों पूजापाठ में लगी रहती, वह अकेले ही घर के सभी काम निबटा लेती थी।

महात्मा गाँधी अफ्रीका की प्रथम यात्रा के बाद भारत लौट आये तो उन्होंने देश की यात्राऐं की और दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों की दुर्दशा के विषय में बयान दिये। दक्षिणी अफ्रीका से जल्दी ही तार मिला। इस बार वे कस्तूरबा, अपने दोनों पुत्र और अपनी बहन के पुत्र के साथ वहाँ गये। समाचार पत्रों में गांधीजी के बयानों को बढ़ा-चढ़ाकर प्रकाशित किया था। जिससे वहाँ के गौरे निवासी उसके विरोधी हो गये थे जब वे बन्दरगाह पर जलयान से पहुंचे तो उसे 13 दिनों तक समुद्र में

रखा। तत्पश्चात् जब जहाज से बाहर आये तो कस्तूरबा को अलग से भेजा और स्वयं एक अंग्रेज मित्र के साथ चल दिये। यह समाचार सुनकर भीड़ एकत्रित हो गई और महात्मा गाँधी को गम्भीर रूप से घायल कर दिया। इस अवस्था में कस्तूरबा ने उनकी सेवा सुश्रुषा की। स्वस्थ्य होने के कुछ वर्षों तक, गांधीजी ने कोई राजनीतिक कार्य नहीं किया। कस्तूरबा ने इस काल में सच्ची गृहस्थी का सुख प्राप्त किया उसने सच्ची जीवन संगिनी के रूप में गांधीजी का हर परिस्थिति में साथ दिया। वकालत से जो मिलता उससे वह बड़ी दक्षता से निर्वाह कर लेती।

इस दक्षिणी अफ्रीका की भूमि पर ही, गांधीजी ने 'महात्मा गाँधी' बनने की दिशा में प्रयोग आरम्भ किये। स्त्री को सम्भोग की वस्तु न मानते हुए ब्रह्मचर्य व्रत लिया। सादा भोजन बिना मिर्च मसाले के आरम्भ किया। कस्तूरबा की आयु तब लगभग 35 वर्ष थी इस युवावस्था में सांसारिक इच्छाओं को त्यागकर अतुलनीय उदाहरण पेश किया। 1901 में महात्मा गाँधी ने स्वदेश लौटने का फैसला लिया तो भारतीयों ने उनकी सेवाओं के लिए बहुमूल्य उपहार दिये। उसमें 50 (पचास) गिन्नियों का एक हार भी था जिसको कस्तूरबा अपने पास भविष्य की आर्थिक सुरक्षा के उद्देश्य से रखना चाहती थी। गांधीजी के आग्रह पर उसे भी जनकल्याण के कार्यों में प्रयोग करने के लिए मान गई।

महात्मा गाँधी में अहिंसा के भाव भी कस्तूरबा की देन है। एक बार सनातनी रूढिता के कारण, गांधीजी ने कस्तूरबा को घसीटते हुए घर से चले जाने को कहा तो उसने ही सहिष्णुता और शान्त स्वभाव से स्थिति को सुलझाया। संकट की घड़ी पुत्र मणिलाल के लम्बे समय से पीड़ित होने पर आई। कस्तूरबा के सहधर्मिता के स्वभाव के कारण प्राकृतिक उपचार से वे स्वस्थ हुए।

महात्मा गाँधी तीसरी बार दक्षिणी अफ्रीका गये और वहाँ फिनिक्स आश्रम की स्थापना की। इसमें कस्तूरबा का ग्रहणी की इच्छानुसार व्यक्तिगत जीवन नहीं रहा वहाँ वे गम्भीर रूप से बीमार हो गई। महात्मा गाँधी की अनुमति के बावजूद डाक्टरों के आग्रह पर भी माँस का सेवन नहीं किया। दक्षिणी अफ्रीका में ही 'घरेलू सत्यागह' पर प्रयोग हुआ। कस्तूरबा एक बार और बीमार हो गई। गांधीजी ने कुछ दिन नमक छोड़ देने को कहा। कस्तूरबा ने असम्भावित बताकर स्वयं छोड़ देने को कहा। गाँधी जी दृढ निश्चयी तो थे ही। तत्काल नमक और दाल का प्रयोग एक वर्ष नहीं करने का निश्चय जताया जो उन्होंने 6(छः) वर्ष तक निभाया।

कस्तूरबा की पहली जेल यात्रा दक्षिणी अफ्रीका में ही हुई। उन्होंने वहाँ रह रही महिलाओं के साथ हो रहे अत्याचारों का विरोध किया था। जब जेल से बाहर आई तो शरीर क्या, केवल हड्डियाँ ही नजर आई।





कस्तूरबा अनेकों बार महात्मा गाँधी के कष्ट निवारण में सहायक सिद्ध हुई। दक्षिणी अफ्रीका में दो बार, पहले बन्दरगाह घटना में, दूसरी बार जब पठानों ने भ्रम में गाँधी को अधमरा कर दिया था। साधारण वृत्तिवाली महिलाओं की भाँति, कस्तूरबा भविष्य में गांधीजी को राजनीतिक कार्यों से रोकती। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया, वरन् उनसे कन्धे से कन्धा मिलाकर काम किया।

गांधीजी ने भारत लौटकर अहमदाबाद में 'सत्याग्रह आश्रम' की स्थापना की जिसमें 25-30 स्त्री पुरुष रहते थे। कस्तूरबा ने उसके संचालन का उत्तरदायित्व सम्भाला। यहाँ पर ही, एक अछूत के आश्रम-प्रवेश के बाद कस्तूरबा ने छुआछूत का सनातनी व्यवहार त्याग दिया। चम्पारन में निहलों की समस्या के निवारण के लिए महात्मा गाँधी का पहला कार्य था इसमें जहाँ गांधीजी ने राजनीतिक कार्य किया, कस्तूरबा ने गांव-गांव जाकर रचनात्मक कार्य किये। यहीं पर कस्तूरबा द्वारा महिलाओं की हालत बताने पर, गाँधीजी ने एक धोती प्रयोग करने का व्रत लिया था। कस्तूरबा ने इसी प्रकार गुजरात के खेड़ा जिले के सत्याग्रह के अवसर पर कार्य किये। कस्तूरबा गाँधीजी के लिए जीवन दायनी सिद्ध हुई। गाँधीजी ने गायों और भैंसों का दूध पीना छोड़ दिया था। बीमारी के कारण गाँधीजी के लिए दूध अत्यन्त आवश्यक हो गया था। तब कस्तूरबा ने उनको बकरी का दूध पीने का सुझाव दिया। इसको स्वीकार करने के बाद महात्मा गाँधी स्वस्थ हो पाये।

कस्तूरबा अपने जीवन में 7(सात) बार जेल गई। पहली बार दक्षिणी अफ्रीका में और छः(6) बार भारत देश में। उनकी अन्तिम जेल यात्रा आगां खां प्लेस में थी जहाँ उनकी 22 फरवरी 1944 को मृत्यु हो गई। उन्होंने अपने जीवन में कितने कष्ट सहन किये उनकी कोई गिनती नहीं थी। जब साम्प्रदायिक दंगों के कारण गाँधीजी ने दिल्ली में 21 दिन का उपवास किया था कस्तूरबा की मनः स्थिति कैसी होगी?उसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। इसी के कारण वे समय से पूर्व ही वृद्ध नजर आने लगी थी। जब गाँधीजी को जेल भेज दिया जाता था तो कस्तूरबा जन-उत्साह बनाये रखने के लिए सक्रिय भाग लेती थी। कस्तूरबा अत्यन्त भावुक भी थी। जेल में महादेव देसाई की मृत्यु और गाँधीजी द्वारा 21 दिन के उपवास के सदमें को वे सहन नहीं कर सकी जो उनकी मृत्यु का कारण बने।

**

# पंजाब केसरी–लाला लाजपत राय

*भारत सरकार ने लाला लाजपतराय जी के सम्मान में सर्वप्रथम 28 जनवरी 1965 को 15 पैसे की 20 लाख डाक टिकट जारी की।*

लाला लाजपतराय का जन्म 18 फरवरी 1865 ई. में अपने ननिहाल डोड़िकाग्राम में हुआ। इनके पिताजी श्री राधाकृष्ण लुधियाना जिले के जगरावँ गाँव के निवासी थे और सरकारी सेवा करते थे। लाला लाजपतराय अध्ययन में बहुत ही कुशाग्र बुद्धि थे। लाहौर विश्वविद्यालय से एन्ट्रेन्स परीक्षा बहुत अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की, परिणामस्वरूप सरकार की ओर से छात्रवृत्ति मिली। लाजपतराय ने 1885 में वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण करके अपनी शिक्षा पूर्ण की।

लाला लाजपतराय में समाज सेवा की भावना प्रारम्भिक जीवन से ही थी। लाहौर नगर की आर्य समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता थे। अंग्रेजों के कुशासन और शोषण नीति के कारण उन दिनों अकाल पड़ जाना कोई नई बात नहीं होती थी। अकाल में भोजन सामग्री, जल, पशुचारे आदि की कमी पड़ने से जनजीवन त्रस्त हो जाता था। 1896 ई. में उत्तर भारत में, 1899 ई. में राजस्थान में और 1907–08 ई. में उड़ीसा, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में भयंकर अकाल पड़ा था। इस त्रासदी के समय दिन-रात एक कर दिया और अकालग्रस्त लोगों को सामग्री और धन से सहायता की। उनकी इस सहायता प्रवृत्ति ने अंग्रेजों को भी मुग्ध कर दिया और उन्होंने उनकी भूरि-भूरि सराहना की।

नेताओं के दिशा निर्देश से लोगों में अंग्रेज शासन का विरोध होना प्रारम्भ हो गया। उन्होंने कांग्रेस पार्टी को जो स्वतन्त्रता के लिए प्रार्थना पत्र, अपील आदि करती थी अब ठोस कार्यवाही करने का साधन बना लिया। लाला लाजपतराय ने असंख्य लेख लिखे और जोशीले भाषण दिये। 16 मई 1907 को अंग्रेज सरकार ने इन्हें विद्रोही घोषित करके देश निर्वासन की सजा दे दी ओर उन्हें रंगून के पास मांडले जेल में भेज दिया।

लाला लाजपतरायजी 11 नवम्बर 1907 को जेल से छूटे। उसके बाद राजनीतिक गतिविधियां तेज हो गई। कांग्रेस में दो दल बन गये थे-नरम दल और गरम दल। इन दोनों मे नीतिगत असमानता थी किन्तु पार्टी अविभाजित रही।

ब्रिटिश शासन बहुत शक्तिशाली था। कांग्रेस पार्टी के धीमे विरोध से स्वतन्त्रता प्राप्ति का लक्ष्य जल्दी प्राप्त होना संभव नहीं था। देश में असन्तोष व अराजकता को देखकर ब्रिटिश शासन ने साइमन कमीशन यह जाँच करने के लिये नियुक्त





किया कि भारत के लोग स्वराज के योग्य हैं कि नहीं। यह कार्य भारत देश की गैरत पर सीधा आक्रमण था। कांग्रेस ने इस कमीशन के विरोध का फैसला किया। लाला लाजपतराय ने इस साइमन कमीशन का 30 अक्तूबर 1928 को लाहौर रेलवे स्टेशन पर पहुंचने पर विरोध करने के लिए जुलूस का नेतृत्व किया। ''साइमन वापिस जाओ'', "Simon Go Back" और ''वन्दे मातरम'' के नारों से स्टेशन गूंज उठा। पुलिस एक गोरे अफसर साण्डर्स के आधीन वहाँ प्रबन्ध के लिए तैनात थी। उसको यह सहन नहीं हुआ और अचानक लाठियाँ चलानी शुरू कर दी। अनगिनत लाठियाँ लाला लाजपतराय की छाती पर पड़ी। रायजादा हंसराज ने इनके ऊपर छाकर लाठियाँ अपने ऊपर झेली। बाद में एक जलसा हुआ और उसमें लाला लाजपतराय ने बड़ा जोशीला भाषण दिया जिसमें ये ऐतिहासिक वाक्य कि **''मेरे शरीर पड़ी हुई एक-एक चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कील होगी''** आज भी हर व्यक्ति को याद हैं। दिल्ली से कांग्रेस कार्य समिति की बैठक में भाग लेकर वापिस आये तो छाती के घाव और सूजन घातक सिद्ध हुई और उनकी मृत्यु 17 नवम्बर 1928 को 63 वर्ष की आयु में हो गई। यह समाचार सारे विश्व में आग की तरह फैल गया। भारतीय नौजवानों ने इस घटना को देश की अस्मिता का प्रश्न बना लिया और बाद में शहीद भगत सिंह ने उस गोरे पुलिस अफसर साण्डर्स की हत्या करके बदला लिया।

**स्कॉटलैंड ने भी लाला लाजपत राय की स्मृति में डाक टिकट जारी किया है।**

**

# डॉ. भगवानदास

*भारत सरकार ने भारत रत्न डॉ. भगवान दास के सम्मान में सर्वप्रथम 20–1–1969 को 20 पैसे की 30 लाख डाक टिकटें जारी की।*

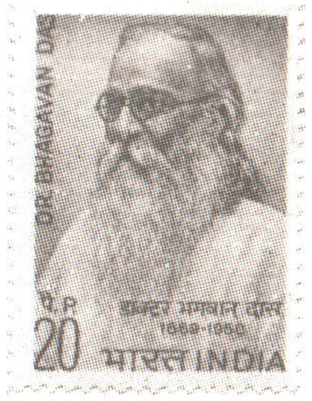


डॉ. भगवानदास का जन्म 12 जनवरी 1869 को वाराणसी में हुआ था। उनके पिताजी का नाम साह माधवदास था। बारह वर्ष की आयु में एन्ट्रेन्स की परीक्षा पास की। 17वर्ष की आयु में 1885 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से दर्शन-शास्त्र लेकर एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। वे अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि थे। उनकी प्रतिभा और कुशाग्रता को देखकर लोग दातों तले उंगली दबाते थे। यह आश्चर्य की बात थी कि इतनी अल्पायु में उन्होंने इतनी उच्च शिक्षा प्राप्त कर ली थी। दर्शन शास्त्र डॉ. भगवानदास के जीवन का अंग बन गया था। साइन्स ऑफ इमोशन और साइन्स ऑफ पीस की रचना करके विद्वानों और बुद्धिजीवों में चर्चा का विषय बने। उनकी विद्वता और प्रतिभा का संज्ञान लेते हुए, भगवानदास को 1929 में बनारस विश्वविद्यालय ने और 1937 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने अपनी सर्वोच्च उपाधि डी. लिट. से अलंकृत किया। आपने 30 पुस्तकों का सृजन किया।

डॉ. भगवानदास का विवाह 15 वर्ष की आयु में हुआ था। परिवार में विपुल धन-दौलत होते हुए भी उनके पिताजी ने एक अध्यापक की शिक्षित पुत्री से उनका विवाह करके आदर्श प्रस्तुत किया। वे कहा करते थे कि परिवार की गरिमा, बड़प्पन पैसे की तराजू में नहीं तोला जा सकता बल्कि चरित्र और गुणों से आंका जाता है। डॉ. भगवानदास का बाद का दर्शन-शास्त्र इन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित रहा।

शिक्षा के बाद, डॉ. भगवानदास ने आरम्भ के आठ वर्ष सरकारी नौकरी की। वे गाजीपुर, कंचनपुर व इलाहाबाद के कलैक्टर रहे। इस कार्य के दौरान उनको जनता से समीप से सम्पर्क का अवसर मिला। उनकी आवश्यकताओं और पीड़ा को जाना। इसी समय इनका परिचय डॉ. एनी बेसेन्ट से हो गया। पिताजी की मृत्यु हो जाने के कारण नौकरी छोड़नी पड़ी। डॉ. बेसेन्ट थ्योसोफी (Theosophy) अर्थात "आध्यात्म द्वारा ईश्वर का ज्ञान व आनन्द" की सक्रिय नेता थी। यह एक आन्दोलन का रूप ले चुका था। डॉ. भगवादास का चिन्तन और लेखन, धर्म, शिक्षा, समाज कल्याण, राजनैतिक परिवर्तन आदि क्षेत्र में था। उनका चिन्तन डॉ. बेसेन्ट के उद्देश्य से मेल खाता था। इस प्रकार ये दोनों एक टीम बनाकर साथ-साथ भारत भ्रमण करते रहे। जहाँ यूरोप के बुद्धिजीवियों ने तीन-आर (Three R's) अर्थात Reading (पढ़ना), Writing (लिखना), Arithmatic (गणित) को उच्च शिक्षा और चरित्र निर्माण का आधार माना, आपने एक और "आर" अर्थात् Religion (धर्म) को जोड़ा और जोर देकर सिद्ध किया कि जीवन में शिक्षा और चरित्र





निर्माण का उच्च लक्ष्य धर्मज्ञान और उसके चिन्तन के बिना शुष्क और निर्जीव रहेगा। डॉ. भगवानदास का यही सिद्धान्त देश के निर्माण और उत्थान में कारगर सिद्ध हुआ।

1921 में डॉ. भगवानदास को काशी विद्यापीठ का कुलपति नियुक्त किया गया। डॉ. भगवानदास का महात्मा गांधी से निकट सम्बन्ध था। उनके निर्देशन में हरिजनों के उद्धार के लिए आन्दोलन चलाया। अंग्रेज भारतीय समाज में संगठन को अपने साम्राज्य के लिए एक बाधा मानते थे। इन्होंने उच्च जाति को उकसाकर इस कार्य का विरोध करवाया। महात्मा गाँधी ने डॉ. भगवानदास को धार्मिक ग्रन्थों से उस सामग्री को संकलित करके एक पुस्तक तैयार करने को कहा जिससे यह सिद्ध हो जाये कि हरिजन उद्धार धर्म के विरुद्ध नहीं है। डॉ. भगवानदास ने जो सामग्री जुटाई वह आज भी इस पक्ष को उजागर करने के लिये पर्याप्त है।

डॉ. भगवानदास 1923 से 1925 तक बनारस नगर पालिका के चेयरमैन रहे। उन्होंने आयरलैण्ड की संस्था की भांति इसको भी स्वतन्त्र और स्वायत बनाने का प्रयत्न किया। वे मानते थे कि जनसेवा के लिये योग्यता और निष्ठा हो तो निर्वाचन में प्रचार करने की आवश्यकता नहीं होती है।

डॉ. भगवानदास ने अंग्रेजों द्वारा हिन्दू-मुसलमानों में विभाजन की नीति को समीप से देखा था। जब कांग्रेस नेताओं के सामने मुस्लिम लीग के नेता ने कहा कि हिन्दू सदा आक्रमणकारी (जारीहाना) और मुसलमान आत्मरक्षक (दफियाना) है तो अन्य नेता द्वारा कोई उत्तर न देने पर डॉ. भगवानदास ने इतिहास के उदाहरण देकर सिद्ध किया कि हिन्दू कभी आक्रमणकारी नहीं रहा। महमूद गजनवी, शहाबुद्दीन आदि के अत्याचार सब जानते थे जिन्होंने अपने धर्म के लोगों तक को भी नहीं बक्शा था।

समाज ओर देश सेवा का नशा डॉ. भगवानदास में भी था। वे सम्पन्न परिवार के होते हुये भी हर सुख सुविधा को त्यागकर सन् 1921 में महात्मा गाँधी के आह्वान पर असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। एक वर्ष तक के कारावास का दण्ड मिला। इस प्रकार के कष्ट सहना उनके लिए कठिन नहीं था, परन्तु पौत्र और बहू के देहान्त के सदमें को वे सहन नहीं कर सके। पौत्र की बीमारी के दिनों में उन्होंने सब कुछ छोड़ दिया था। 57 वर्ष की आयु में मिर्जापुर के चुनार में घर बनवाकर रहने लगे। इनको काफी पीने का बड़ा शौक था। डॉ. भगवानदास को 32 बार दिल का दौरा पड़ा और बहुत कमजोर हो गये थे। 18 सितम्बर 1958 को रात आठ बजे इनका देहान्त हुआ।

डॉ. भगवानदास देश को विरासत में अपने सुयोग्य पुत्र श्रीप्रकाश को दे गये जिन्होंने विभिन्न प्रकार से देश की सेवा की। डॉ. भगवानदास को 1955 में देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने राष्ट्र के सर्वोच्च पदक **"भारत रत्न"** से विभूषित कर उनकी देश सेवा को प्रतिष्ठित किया।

**

# जमनालाल बजाज

*भारत सरकार ने सेठ जमनालाल बजाज के सम्मान में सर्वप्रथम 4–11–1970 को 20 पैसे की 30 लाख डाक टिकटें जारी की।*

जमनालाल बजाज का जन्म 4 नवम्बर 1889 को राजस्थान प्रान्त के काशी का वास गांव में हुआ। वर्धा के सेठ बच्छराज के कोई पुत्र नहीं था। उन्होंने वंश चलाने के लिए जमनालाल को गोद लिया और उसे वर्धा ले आए। उस समय में शिक्षा ने इतनी उन्नति नहीं की थी। मारवाड़ी अपने लड़कों को गणित और लिखने योग्य हिन्दी की शिक्षा दिलाकर अपने व्यवसाय में लगा लेते थे। जमनालाल ने भी बहुत उच्च शिक्षा नहीं प्राप्त की। अपने पिता से व्यापार की पूरी शिक्षा लेकर उन्होंने व्यापार में प्रवेश किया और अपनी योग्यता से साढ़े चार लाख की विरासत को 24 लाख तक पहुंचा दिया था। उस समय 50–60 रुपए में 1(एक) तोला सोना मिल जाता था।

जमनालाल बजाज ने 1918 ई. में **''अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा''** की स्थापना की और वर्धा में एक सम्मेलन का आयोजन किया। जमना लाल का यह नियम था कि वे जिस बात को दूसरों को अपनाने को कहते थे तो पहले उसे स्वयं पर लागू करते थे। अग्रवाल सम्मेलन में उठे विवाद का समुचित उत्तर देने की दिशा में उन्होंने अपनी सुपुत्री का विवाह महात्मा गाँधी के सान्निध्य में बड़ी ही सादगी से वर्धा के आश्रम में किया इसमें उन्होंने 3500/– रू. खर्च किए। वैश्यों के वर्गीकरण को तोड़ने के लिए अपने पुत्र राधाकृष्ण का विवाह महेश्वरी समाज के श्रीकृष्ण प्रसाद जाजू की पुत्री से किया और विरोध करने वालों का मुंह बंद कर दिया। इससे अन्य लोगों पर प्रभाव पड़ा और रूढ़िता टूटने लगी।

जमनालाल बजाज में दो विरोधाभासी गुण पाये जाने थे। जहां वे महान् दानदाता कहे गये वहीं उनको असीम मितव्ययी भी कहा जाता था।

सर जगदीश चन्द्र बोस को अनुसंधान में प्रयोग के लिए विज्ञान–शाला स्थापित करने के लिए 35,000/– रू. दिए। काशी विश्वविद्यालय को पुस्तकालय के लिए 51,000/– रुपये दिए। जमनालाल बजाज को 'स्वाधीनता आन्दोलन का भामाशाह' कहा जाता है। इसे सिद्ध करने के लिए अनेकों प्रमाण है। 1917 में कलकत्ता में कांग्रेस अधिवेशन, 1920 में नागपुर अधिवेशन और 1930 में नमक सत्याग्रह आदि के कार्यक्रम गाँधी जी बनाते थे पर उनको पूर्ण करने का भार जमनालाल पर छोड़ देते थे। इसमें उन्होंने कितना व्यय किया कोई नहीं जानता था। गाँधी जी असहयोग आन्दोलन आरम्भ करना चाहते थे इससे पूर्व एक करोड़ रुपयों का कोष बनाने का निश्चय किया गया। इस कोष के लिए धन जुटाने का काम जमनालाल बजाज के कंधों पर पड़ा। उन्होंने दो बार एक–एक लाख रू. इस कोष में दिए।

जमनाला बजाज को 'संस्थाओं की संस्था' भी कहा गया। स्वाधीनता आन्दोलन में अपना कर्त्तव्य करते हुए, समाज सुधार और समाज सेवा के लिए उन्होंने अनेक संस्थाएं





स्थापित कीं इनमें सत्याग्रहाश्रम, महिला सेवा मंडल, मारवाड़ी सेवा मण्डल, कामर्स कालेज, गौसेवा चर्मालय, गौसेवा संघ, ग्राम उद्योग संघ, चरखा संघ, गाँधी सेवा संघ प्रमुख हैं। उनके संचालन का सारा खर्च स्वयं ही वहन करते थे।

जमनालाल बजाज एक अद्‌भुत और सटीक पारखी थे। 1915 में वे महात्मा गाँधी से अहमदाबाद के साबरमती आश्रम में मिलने गए वहां उनसे अनेक सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों पर विचार–विमर्श हुआ। महात्मा गाँधी को जानने में उनको देर नहीं लगी वे उनकी सादगी और नैतिक मूल्यों से प्रभावित हुए और तुरन्त उनका अनुयायी बनने का फैसला किया। बाद में वे पाचवें पुत्र कहलाए जिसे गाँधी ने भी स्वीकार किया। इसके पश्चात् जमनालाल बजाज ने कार्यकर्ताओं की एक पूरी टीम बना ली जो हर अवसर पर काम आई। कानपुर अधिवेशन से श्रीमन्नारायण को अपने साथ ले आए। जिसके साथ बाद में अपनी पुत्री मदालसा का विवाह किया।

जमनालाल बजाज अनुशासन के दृढ़ अनुयायी थे और सभी से अपेक्षा करते थे कि वे भी इसका पालन करें। जेल यात्रा में सदैव द्वितीय श्रेणी की जेल में रहे और उस श्रेणी में देय सुविधा ही प्राप्त करते थे। कांग्रेस पार्टी के लम्बे समय तक कोषाध्यक्ष रहे। उन्होंने जब भी पार्टी के काम में यात्राएं की, प्रथम श्रेणी के हकदार होते हुए द्वितीय श्रेणी में ही जाते थे। कांग्रेस पार्टी ने मितव्ययता का प्रस्ताव पारित किया तो उन्होने नियम बना लिया कि वे 500/– रुपये प्रतिमाह से अधिक व्यय नहीं करेंगे जिसमें पत्र व्यवहार और रेल यात्रा का खर्चा भी शामिल था।

जमनालाल बजाज जैसा गांधीवादी शायद दूसरा हो। उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन को सच्चाई और पूरी लगन से चलाया। परिवार में उपलब्ध सभी वस्त्रों की होली दो बार जलाई। साड़ियों पर सोने और चांदी की किनारी और गोटे को भी नहीं रखने दिया। छूआछूत, स्पृशता निवारण और दलितोद्धार में अनुकरणीय काम किए। सबसे पहले एक हरिजन को घर में रसोइये का काम दिया। गांव के कुए को हरिजनों को पानी ले जाने के लिए खोल दिया। मारवाड़ी समाज के व्यक्तियों के विरोध के बावजूद जमनालाल बजाज ने अपना वर्धा में स्थित 'लक्ष्मीनारायण मंदिर' अछूतों के लिए खोल दिया। उन्होंने पहली बार उनकी संगति में पूजा अर्चना की। जमनालाल एक ऐसे व्यक्ति थे जिसके कितने ही खान भाई थे और कितनी ही मुस्लिम महिलाएं उनकी बहने थी। उन्होंने सर्व समर्थ होते समाज में रौब और उच्च स्तर के स्थान पर किंचन सेवक बनने का रास्ता चुना। आनरेरी मजिस्ट्रेट के पद को अस्वीकार करना और अंग्रेज सरकार से 'राय बहादुर' की पदवी को ठुकराना इस प्रवृत्ति के साक्षात् उदाहरण हैं। जमनालाल बजाज का हृदय बहुत कोमल ओर विशाल था। महात्मा गाँधी के संसर्ग और कांग्रेस पार्टी की नीति के कारण स्वाधीनता आन्दोलन अहिंसक रहा। परन्तु जमनालाल बजाज को इस बात का अहसास था कि क्रान्तिकारी कितने अभाव और विषम परिस्थितियों में देश की स्वतन्त्रता के लिए काम करते हैं इसलिए वे उनकी खुले दिल से आर्थिक सहायता करते थे। उन्होंने सरदार भगतसिंह को बचाने के लिए मुकदमें के दौरान वकीलों की लाखों रूपये की फीस का भुगतान किया। मृत्यु से कुछ वर्ष पूर्व जमनालाल बजाज 'गोपुरी' के पास ही पत्तों और फूस आदि से बनी कुटिया में रहने लगे थे। सात्विक और सादे जीवन के साथ गौ सेवा, गौरक्षा और गौसंवर्धन में पूरा समय लगाने लगे थे। जब महात्मा गाँधी के नेतृत्व में 'गो–सेवा–संघ' की स्थापना हुई तो उसके सभी काम काज की पूरी जिम्मेदारी उन्होंने अपने ऊपर ले ली। यही कार्य करते हुए 11 फरवरी 1942 को उनका गोलोक वास हुआ।

**

# काशी विद्यापीठ

*भारत सरकार ने काशी विद्यापीठ की स्थापना के पचास वर्ष पूरा होनें पर स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य में सर्वप्रथम 10–2–1971 को 20 पैसे की 30 लाख डाक टिकटें जारी की।*

काशी विद्यापीठ की स्थापना किन परिस्थितियों में हुई यह देशभक्ति और स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष की एक कहानी है। महात्मा गाँधी ने दक्षिणी अफ्रीका से लौटकर देश की स्वाधीनता के आन्दोलन की बागडोर 1919 में अमृतसर में जलियाँवाला बाग काण्ड के बाद हुए कांग्रेस अधिवेशन में सम्भाल ली थी। 30 मई 1920 को कांग्रेस अधिवेशन काशी में हुआ जिसमें असहयोग आन्दोलन आरम्भ करने का प्रस्ताव पास किया गया और फैसला हुआ था कि अगला अधिवेशन कलकत्ता में होगा जिस में महत्वपूर्ण घोषणाऐं होगी। कांग्रेस पार्टी का 1921 का अधिवेशन लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में हुआ। इस स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए 'असहयोग आन्दोलन' आरम्भ कर देने की घोषणा की गई। इसके अनुसार वकीलों को ब्रिटिश जजों की अदालतें, सरकारी कर्मचारियों को अंग्रेज अधिकारियों और विद्यार्थियों को कालेज और स्कूल छोड़ देने का आह्वान था। उन दिनों विद्यार्थी समाचार पत्रों के माध्यमों से स्वतन्त्रता आन्दोलन की गतिविधियों की जानकारी रखते थे और उनमें देश के लिए हर प्रकार की कुरबानी करने की देशभक्ति असीम थी। कांग्रेस के आह्वान पर स्कूल और कालेजों में विद्यार्थियों ने जाना बन्द कर दिया। कांग्रेस पार्टी को खुशी थी कि उनके आह्वान का आशा से अधिक प्रभाव पड़ा। परन्तु उसको यह चिन्ता होने लगी कि विद्यार्थियों का भविष्य नष्ट न हो। वे शिक्षा से वंचित न रहे और देश उनकी देशभक्ति और योग्यता से लाभ उठाता रहे। इस समस्या का समाधान कोई शिक्षा संस्था की स्थापना करना था। शिव प्रसाद गुप्त ने 10 (दस) लाख रुपये मूलधन से अपने छोटे भाई श्री हरिप्रसाद की स्मृति में एक शिक्षा निधि स्थापित की। इस शिक्षानिधि ने महात्मा गाँधी की प्रेरणा से 10 फरवरी 1921 को काशी विद्यापीठ की स्थापना की। इस **'काशी विद्यापीठ'** में अनेक विद्यार्थियों ने जिन्होंने अंग्रेजों द्वारा संचालित शिक्षा संस्थाओं का परित्याग किया उनमें एक विभूति लाल बहादुर शास्त्री थे। उन्होंने इस विद्यापीठ में ''लाल बहादुर'' के नाम से प्रवेश लिया और जब शिक्षा पूरी करके 'काशी विद्यापीठ' से बाहर आये तो 'लाल बहादुर शास्त्री' कहलाये। वे देश के प्रथम प्रधानमन्त्री पं. जवाहर लाल नेहरू की मृत्यु के पश्चात् दूसरे प्रधान मन्त्री बने और देश की बहुमूल्य सेवा की जिसमें 1965 में पाकिस्तान से युद्ध में विजय और





खाद्यन्न में आत्म निर्भरता की योजनाएँ प्रमुख हैं। इस काशी विद्यापीठ की विशेषता थी कि यहाँ **'हिन्दी'** भाषा शिक्षा का माध्यम था इसमें सभी विषय इसी भाषा में पढ़ाये जाते थे। इस 'काशी विद्यापीठ' की स्थापना के स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर उसमें पढ़ने वाले देशभक्तों को याद किया गया, जिनमें त्रिभुवन नारायण सिंह, डॉ. राम सुभग सिंह, डॉ. बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर, कमलापति त्रिपाठी, भोला पासवान प्रमुख हैं। इस विद्यापीठ के संचालन में श्री श्रीप्रकाश ने महान् सहयोग दिया। वे वर्षों तक शिक्षानिधि के मन्त्री व कोषाध्यक्ष रहे। 1971 में उसके सभापति बने। इस विद्यापीठ में व्यवस्था सम्बन्धी कार्यों के साथ-साथ प्रतिदिन अंग्रेजी साहित्य, राजशास्त्र और न्यायशास्त्र का अध्यापन करते थे।

**

# राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त

*भारत सरकार ने राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त के सम्मान में सर्वप्रथम 3–7–1974 को 25 पैसे की 30 लाख डाक टिकटें जारी की।*

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म श्रावण शुक्ल 2 सम्वत् 1943 अर्थात् 3 अगस्त 1886 को उत्तर प्रदेश प्रान्त के जिला झाँसी के अन्तर्गत चिरगाँव में हुआ। उनके पिताजी सेठ रामचरण 'कनकलता' उपनाम से कविता लिखते थे इस प्रकार उनको काव्य-गुण विरासत में प्राप्त हुए। गुप्त जी आरम्भ में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने झाँसी शहर गये परन्तु उस वातावरण में रम नहीं पाये और वापिस चिरगांव लौट आये। उनकी शिक्षा का प्रबन्ध घर पर ही किया गया।

घरेलू वातावरण से मैथिलीशरण की प्रवृत्ति काव्य सृजन की ओर झुकी और जो रचनाएँ की वे कलकत्ते से प्रकाशित जातीय पत्र में छपी। शीघ्र ही उनका सम्पर्क आचार्य द्विवेदी जी से हुआ जिन्होंने उनकी रचनाओं को बहुत पसंद किया और उचित मार्गदर्शन किया इससे उनकी रचनाऐं 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगी। मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी जी को अपना काव्य गुरु मानते थे। उनके गाँव के मुंशी अजमेरी जी साहित्य-जगत के प्रमुख व्यक्ति थे उनकी प्रेरणा से वे साहित्य सर्जन में लगे।

मैथिलीशरण गुप्त पर विद्वानों ने आलोचनात्मक और जीवन के विश्लेषण पर एक के बाद एक कई पुस्तकें लिखी हैं उनका जीवन सादा, उच्च और सात्विक विचारों वाला रहा। वे राय कृष्णदास की काशी में गंगा के किनारे स्थित कोठी में प्राय: जाया करते थे यहाँ पर साहित्य पर विचार-विमर्श रात देर तक चलता रहता था गुप्तजी को सभी 'दद्दा' कह कर पुकारते थे। वहाँ उपस्थित रचनाकारों में किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं होती थी एक दूसरे में आपसी छेडछाड़ चलती रहती थी। मैथिलीशरण का जीवन जहाँ साहित्यिक क्षेत्र में जीवट और सजीव था वहीं व्यक्तिगत घरेलू जीवन भिन्न था। उनके तीन विवाह हुए। इस प्रकार जीवन साथी के बिछुडने का सन्ताप सहन करना पड़ा वहीं उनको प्रकृति ने संतान सुख नहीं दिया। उनके जीवित रहते उनके छोटे भाई सियाराम शरण और बड़े भाई की मृत्यु हुई।

मैथिलीशरण गुप्तजी का रचना काल सम्वत् 1964 तदानुसार 1907 ई. से आरम्भ होता है उन दिनों में हिन्दी भाषा का संक्रामक काल था। लेखक तब फैसला नहीं कर पा रहे थे कि वे हिन्दी में संस्कृत शब्दों के प्रयोग अधिक करें या अन्य भाषाओं जैसे उर्दू या फारसी आदि के शब्दों का प्रयोग करें। गुप्त जी ने संस्कृत के तत्सम शब्द और ठेठ बोलचाल के शब्दों का प्रयोग किया। उन्होंने रचना करते हुए विषय-वस्तु बड़ी सावधानी से चुनी। उन्होंने पुराने साहित्य के विषयों पर महाकाव्य, खण्डकाव्य और मुक्तककाव्य लिखे। उनके दो महाकाव्य 'साकेत' और 'जयभारत' साहित्य जगत को





बहुमूल्य देने है। इनमें ऐतिहासिक कथाओं को आधुनिक वातावरण के अनुरूप चित्रित किया गया है। साकेत महाकाव्य में आधुनिक नारी की भांति लक्ष्मण के राम के साथ वन में प्रस्थान के पश्चात उर्मिला की विरह वेदना स्थिति का वर्णन बड़ा ही मार्मिक हैं वहीं 'पंचवटी में शूर्पणखां में भौतिक सुख और निर्लज्जता का विवरण है। गुप्त जी ने उद्‌बोधक काव्य चम्पू, रूपक, नाटय-गीति के साथ कई अनुदित काव्य भी लिखे। मैथिलीशरण गुप्त के काल में राजनीति के क्षेत्र में गांधीजी और उनके दर्शन का बोलबाला था इस कारण गांधीवाद का उन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। भारत भारती में देश प्रेम, हिन्दू और मुसलमान दोनों के उद्धार की बात कही गई। गुप्तजी धर्म के विषय में उदारवादी थे जहाँ हिन्दू समाज को बाल-विवाह, अछूतोद्धार आदि कुरीतियों को त्याग देने के लिए उदबोधन किया, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सिक्ख और बौद्ध आदि सभी को संगठित होकर कर्तव्य पालन करने के लिऐ प्रोत्साहित किया। मुसलमानों में सामाजिक चेतना जाग्रत करने के लिए ''काबा और कर्बला'' की रचना की ''अर्जन और विसर्जन'' में उन्होंने ईसाई-संस्कृति का भी उद्‌घाटन किया। गुप्तजी ने प्रबन्ध शैली, रूपकशैली और गीति-काव्य शैली में रचना की। छन्दों में हरिगीतिका छंद सर्वाधिक प्रिय था उनके काव्यों में श्रृंगार, करूण, शांत रस प्रचुर मात्रा में है उनकी रचनाएं अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा, भ्रांति, श्लेष रूपकातिश्योक्ति अलंकारों से सजी है। गुप्तजी की रचनाओं का भंडार विशाल है। पाठकों को उपरोक्त संक्षिप्त जानकारी दी गई है।

मैथिलीशरण गुप्त अपनी रचनाओं में शब्द रूप से ही गांधीवादी नहीं थे। सन् 1951 ई. में आचार्य विनोबा भावे, चिरगांव आये थे। गुप्तजी के नेतृत्व में सारा गांव उनकी अगवानी करने के लिए दूर तक गया। उस दिन सन्ध्या के समय जो सभा हुई उसमें उन्होंने कोई सौ एकड़ जमीन भूदान यज्ञ में विनोबा जी को दी। श्री दिनकर ने गुप्त जी को कालयज्ञपुरूष कहा है, भारत सरकार ने मैथिलीशरण गुप्त की हिन्दी साहित्य की सेवा के आधार पर राज्य सभा में नामित किया। गुप्त जी जब भी राज्यसभा में बोले काव्य के मुखड़ों में बोले। वे ऐसे मुखड़े कई बार साधारण वार्तालाप में भी बोल देते थे। मैथिलीशरण गुप्त में हिन्दी भाषा के प्रति अगाध और अथाह प्रेम था वे अपनी रचना में बुन्देलखण्डी और आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग तो कर लेते थे परन्तु अन्य भाषा का कोई स्थान नहीं था। एक बार बालस्वरूप राही गुप्त जी से दिनकर जी के साथ मिले थे तब वे बोल उठे थे'' अब यही गडबड है। आपने अपना उपनाम 'राही' क्यों चुना, बटोही क्यों नहीं। जब 1963 में संसद में भाषा संशोधन विधेयक आया था तब उन्होंने उसका कड़ा विरोध किया था। गुप्त जी वैष्णव वृति के ही नहीं, खालीस हिन्दूत्व के कवि थे। जब राहुल साँकृत्यानन ने अपने खान-पान में मीट-माँस आदि का वर्णन किया तो एक पद लिखकर उनकी भर्त्सना की थी। मैथिलीशरण गुप्त इस प्रकार पूरे जीवन देश, धर्म और साहित्य की सेवा करते रहे उनका देहान्त 8 जनवरी 1964 को अचानक हो गया। एक मुर्धन्य साहित्यकार हिन्दी साहित्य जगत ने खो दिया।

**

# भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

*भारत सरकार ने भारतेन्दु बाबु हरीश्चन्द्र के सम्मान में सर्वप्रथम 9 सितम्बर 1976 को 25 पैसे की 30 लाख डाक टिकटें जारी की।*

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म 9 सितम्बर 1850 में उनके ननिहाल में हुआ था। उनके पिताजी का नाम गोपाल चन्द्र और माता जी का नाम मुकुन्दी बीबी था। उनकी माताजी का देहान्त 1855 में हुआ। हरिश्चन्द्र महान् साहित्यकार, देशभक्त ओर समाजसुधारक थे। वे मात्र 34 वर्ष और 4 मास जीवित रहे। उनकी शादी 13 वर्ष की आयु में मन्नोदेवी से हुई। हरिश्चन्द्र का परिवार बनारस का धनवान और ख्याति प्राप्त परिवार था। इनके पिताजी काशी नरेश के खजान्ची ही नहीं वरन् साहूकार भी थे। समय-समय पर उनको रूपया-पैसा उधार दिया करते थे। गोपाल चन्द्र एक अच्छे लेखक भी थे और ''गिरधर'' उपनाम से लिखते थे। 13 वर्ष की आयु में रामायण का अनुवाद किया। छोटी बड़ी लगभग 40 (चालीस) रचनाएं प्रकाशित हुई थी। उनकी मृत्यु दोनों पुत्रों हरिश्चन्द्र और गोकुलचन्द्र के यज्ञोपवीत उत्सव पर अधिक भांग के सेवन के कारण हुई।

हरिश्चन्द्र के समय में शिक्षा का विकास नहीं हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा साहुकारों द्वारा संचालित पाठशाला में हुई। उसमें संस्कृत, उर्दू, फारसी भाषा के साथ गणित भी पढ़ाया गया। तत्पश्चात क्वीन्स कालेज में अध्ययन किया। वे पढ़ने में बहुत तेज थे। एक बार जिस अध्याय को पढ़ लेते थे कण्ठस्थ हो जाता था। हरिश्चन्द्र को लेखन की कला अपने पिताजी से विरासत में मिली थी। उन्होंने 13 वर्ष की आयु में लिखना शुरू किया था। हरिश्चन्द्र ने 11 (ग्यारह) वर्ष की आयु में ''स्वर्गवासी अनवरत वर्णन अन्तर्लापिका'' की रचना की। उन दिनों उर्दू का बोलबाला था। हिन्दी भाषा में या तो उर्दू के शब्द या संस्कृत के शब्द प्रयुक्त होते थे। हरिश्चन्द्र ने इस सब से हटकर ''खड़ी बोली'' के विकास में महान योगदान किया। उस समय 9 (नौ) रसों के साहित्य में होने की व्याख्या थी। उन्होंने उनके अतिरिक्त 5(पाँच) अन्य रसों का उल्लेख किया।

हरिश्चन्द्र ने लिखना आरम्भ किया तो निरन्तर रूप से लिखते रहे। उन्होंने हर विधा और हर शैली में लिखा। अपनी अल्पायु में 20 नाटक, 8 आख्यायिकाऐं, 28 काव्य अथवा कविता संग्रह, 7 स्त्रोत, 8 अनुवाद या टीका, 18 रस सम्बन्धी रचनाएं हिन्दी साहित्य को प्रदान की। अग्रवाल समाज की भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने **''अग्रवालों की उत्पत्ति''** नाम से वंशावली की रचना करके महान सेवा की। यह





ग्रन्थ प्रमाणिक और सत्य माना जाता है। ''खत्रियों की उत्पत्ति'' लिखकर अन्य समाज की भी सेवा की। भारतेन्दु ने अन्य भाषाओं का मुकाबला लेने और हिन्दी भाषा के विकास के उद्देश्य से ''कवि वचन सुधा'' साप्ताहिक पत्र की स्थापना की। यह पत्र लोगों में बहुत लोकप्रिय हुआ। इसमें लगभग सभी समकालीन साहित्यकार और सामाजिक नेता लिखते थे। सामग्री में प्रधान लेख, दो चार टिप्पणियाँ, पाँच-दस छोटी छोटी खबरें, अंग्रेजी में Summary of News, हिन्दी में समाचारवली, हास्यरस के लेख आदि इस सभी को एक साथ नियम से छाप कर हिन्दी पत्रकारिता को नई दिशा दी। लिखने की गति इतनी तीव्र थी कि ''अंधेर नगरी-चौपट राजा'' नाटक एक दिन में ही पूरा लिखा था। हरिश्चन्द्र में राष्ट्रीयता और देशभक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी। उन्होंने अनुवादित पुस्तकों में पात्रों के नाम बदलकर भारतीय नाम प्रदान किये। वे ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध लिखने से भी नहीं चूके।

अंग्रेज सरकार ने इनको कोई उपाधि या पुरस्कार नहीं दिया। ''भारतेन्दु'' साहित्यकारों और पाठकों द्वारा सम्मान में सर्वाधिक स्वीकृत उपाधि है। महिलाओं की शिक्षा के समर्थक थे। उन्होंने कहा ''यह बात सिद्ध है कि पश्चिमोत्तर देश में कदापि उन्नति नहीं होगी, जब तक यहाँ की स्त्रियाँ भी शिक्षित न होगी। क्योंकि यदि पुरूष विद्वान और पंडित होवेंगे और उनकी स्त्रियाँ मूर्ख होंगी तो उनमें आपस में स्नेह न होगा और नित्य कलह ही होगा।''

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जीवन माता-पिता की मृत्यु के कारण दुखमय था। उनकी आदत, शौक, समाज में चलन, रंगीन रहा। पान बहुत खाते थे। सुना है कि उन्होंने एक बार एक दिन में 700 (सात सौ) पान खाये थे। इत्र का प्रयोग खुलकर करते थे और उपहार में भी देते थे। यह कहा जाता था कि उनके पास इतना इत्र था कि यदि इत्र के दीपक जलाये तो महीनों तक समाप्त नहीं होता।

भारतेन्दु का देहान्त जनवरी 1885 को हुआ। आप अपने पीछे एक सुपुत्री विद्यावती और धर्मपत्नी मन्नोदेवी को छोड़ गये। साहित्यकारों का मानना है कि यदि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपनी पूरी आयु जीवित रहते तो वे हिन्दी जगत को शेक्सपियर से भी अधिक कृतियाँ प्रदान करते। यह वास्तव में अपूरणीय क्षति है।

**

# महाराजा अग्रसेन

*भारत सरकार ने अग्रवाल समाज के आदर्श युग पुरुष महाराजा अग्रसेन के सम्मान में सर्वप्रथम 24–9–1976 को 25 पैसे के 80 लाख डाक टिकट जारी किये। जो उस समय तक जारी टिकटों में सबसे अधिक संख्या थी।*

महाराजा अग्रसेन एक युग पुरूष थे। उनका प्रादुर्भाव महाभारत की समाप्ति पर, अर्थात् द्वापर युग और कलियुग के संधिकाल में हुआ था। यह समय विद्वानों ने वर्तमान वर्ष से 5131 वर्ष पूर्व माना है। इसे विक्रमी सम्वत् और ईस्वी सन् की भांति ''अग्रसेन वर्ष'' नाम दिया है। इस प्रकार विक्रमी सम्वत् से 3067 वर्षों का और ईस्वी सन से 3124 वर्षों का अन्तर है। अग्रसेन वर्ष को जानने के लिए ये वर्ष विक्रमी सम्वत् और ईस्वीं सन् में जोड़ने होंगे। महाराजा अग्रसेन का जन्म अश्विनी मास के शुक्ल पक्ष की एकम् को माना गया है। महाराजा अग्रसेन राजा धनपाल की छठी पीढ़ी में राजा वल्लभ के यहां अवतरित हुए। राजा वल्लभ प्रतापनगर के राजा थे। प्रतापनगर उस काल में जल से लहराती सरस्वती नदी तथा इषद्वती नदी के मध्य में बसा हुआ था। राजा वल्लभ के दो पुत्र थे, बड़े का नाम अग्रसेन और छोटे का नाम शूरसेन था।

राजा वल्लभ ने अग्रसेन को सभी प्रकार से सुयोग्य जानकर 35 वर्ष की आयु में राजगद्दी पर बैठाया था। अग्रसेन राज्य के सभी काम सम्भालते थे और शूरसेन सेना और सुरक्षा का प्रबन्ध देखते थे। उन दिनों नाग जाति बहुत शक्तिशाली मानी जाती थी। उसके राजा महीधर ने अपनी पुत्री माधवी के विवाह के लिए स्वयंवर बुलाया। निमंत्रण मिलने पर अग्रसेन भाई शूरसेन के साथ उसमें भाग लेने गए। स्वर्ग लोक के स्वामी इन्द्र भी वहां गए। माधवी ने अग्रसेन के गले में स्वयंवर की माला डाल दी। नागराज महीधर ने राजा वल्लभ को सूचना भिजवाई और बारात के साथ आने का निवेदन किया। धार्मिक रीति से विवाह हो गया। स्वर्ग के स्वामी इन्द्र स्वयं को वर न चुने जाने पर कुपित हो गए। वापिस पहुंच कर उन्होंने अपने अनुचरों को अग्रसेन के राज्य में वर्षा नहीं करने का आदेश दिया। वर्षा नहीं होने से राज्य के निवासी संकटग्रस्त हो गए। प्रजा में त्राहि-त्राहि मच गई। अग्रसेन को जब इस षडयंत्र का पता चला कि राजा इन्द्र के अनुचरों ने दिव्य-शक्ति के प्रयोग से वर्षा को रोका था तो इसका मुकाबला करने के लिए अग्रसेन ने दिव्य शक्ति प्राप्त करने का फैसला किया। इसके लिए काशी नगरी में जाकर महालक्ष्मी की घोर तपस्या की। महालक्ष्मी प्रसन्न हुई और प्रकट होने पर अग्रसेन के संताप को सुनकर कहा, ''इन्द्र का सामना करने के लिए शक्ति बढ़ाओ। कोलापुर नागलोक है इसके राजा कुमुद की पुत्री सुन्दरवती का स्वयंवर होने वाला है उससे विवाह होने पर तुम्हारी शक्ति राजा इन्द्र से अधिक हो जाएगी, तब इन्द्र स्वयं शांत हो जाएगा।'' महालक्ष्मी





यह रहस्य बताकर अंर्तध्यान हो गई। महर्षि नारद उसी समय प्रगट हुए। अग्रसेन ने उनको कोलापुर ले जाने की प्रार्थना की। महर्षि ने अग्रसेन को रंगशाला के द्वार पर पहुंचा कर अपने लोक को प्रस्थान किया। राजा कुमुद ने सभी विद्यमान राजकुमारों का परिचय कराया। राजकुमारी सुन्दरावती ने अग्रसेन के गले में वरमाला डाल दी और विवाह हो गया।

महाराजा अग्रसेन की शक्ति में वृद्धि से सभी ओर उनका यश और कीर्ति फैल गई। राजा इन्द्र शांत हो गए और सन्धि कर ली। मंदाकिनी क्षेत्र में राजा हिमालय राज्य करते थे उन्होंने अग्रसेन की कीर्ति सुनी और अपनी पुत्री सुपात्रा के विवाह का प्रस्ताव उसके छोटे भाई शूरसेन से करने के लिए भेजा। राजा वल्लभ ने राज्य की भलाई में इसे स्वीकार किया और शूरसेन का विवाह सुपात्रा से हो गया।

वृद्धावस्था में राजा वल्लभ वर्णाश्रम धर्म के अनुसार राज्यभार बड़े पुत्र अग्रसेन को सौंप कर वन में तपस्या करने चले गए। वहीं वे ब्रह्मलीन हो गए। अग्रसेन ने उनकी मुक्ति के लिए गया जाकर पिंडदान किया। परन्तु ब्राह्मण कन्या के शाप के कारण पिंडदान स्वीकृत नहीं हुआ। उन्होंने पंडितों से उपाय पूछा तो उन्होंने लोहागढ़ जाकर पिंडदान करने की सलाह दी। तदानुसार अग्रसेन लोहागढ़ गए, पिंडदान किया और पिताजी को मुक्ति दिलाई।

लोहागढ़ से आते हुए आज स्थापित अग्रोहा के पास जंगल में रात बिताने के लिए अपना शिविर लगाया। वहां अद्भुत घटना घटी। एक शेरनी प्रसव कर रही थी। जिसमें अग्रसेन की सेना के कारण विघ्न पड़ा। उस सिंहनी के पैदा हुए बच्चे ने अपनी मां की पीड़ा को अनुभव किया और उछलकर राजा अग्रसेन के हाथी पर प्रहार किया। यह देखकर अग्रसेन को आश्चर्य हुआ और विद्वान आचार्यों से इसका कारण पूछा। उन्होंने परस्पर परामर्श करके बताया कि यह वीर प्रसूता-भूमि है और सिंहनी के बच्चे ने इसी प्रभाव से ऐसा किया है। यह जानकर अग्रसेन ने तुरन्त निर्णय लिया कि राज्य की राजधानी यही बनाई जाए। प्रतापनगर राजधानी छोटे भाई शूरसेन को सौंपकर राज्य का संचालन नई राजधानी अग्रोहा से करने लगे। अब उनके राज्य की सीमा उत्तर में हिमालय पर्वत और पंजाब की नदियाँ, दक्षिण और पूर्व में गंगा, पश्चिम में यमुना से लेकर मारवाड तक का प्रदेश था।

अग्रोहा राजधानी अग्रसेन के लिए बहुत भाग्यशाली सिद्ध हुई। इसमें लगभग एक लाख समृद्ध और वैभवशाली परिवार रहते थे यहां से ही अग्रसेन ने **समता और समानता** का सिद्धान्त परिपादित किया था। यदि कोई दीन और विपन्न व्यक्ति अग्रोहा में आकर बसता था तो यहां के निवासी एक रूपया और एक ईंट देकर उस परिवार को सहयोग देते थे। इससे वह ईंटों से घर बना लेता था और रुपयों से व्यवसाय करके जीवन-बसर करने लगता था। इसी प्रकार की संहायता नगर के उस व्यापारी को भी प्रदान की जाती थी जिसको व्यापार में हानि हो जाती थी। मतलब ये कि उनके राज्य में कोई गरीब नहीं था सभी समान थे।

अग्रसेन अग्रवाल समाज के संगठक थे वे इसके जनक नहीं थे उन्होंने प्रजा को

वैज्ञानिक और धार्मिक अनिवार्यता के आधार पर व्यवस्थित किया। उन्होंने उसे 18 (अट्ठारह) श्रेणियों में विभक्त किया हर श्रेणी को नाम दिया, जो कालान्तर में कुल कहलाऐ। उनके नाम और गौत्र अलग कहलाए।

वैभव और गौरव को उच्चता देने के लिए उन दिनों में अश्वमेध यज्ञ किए जाते थे। महाराजा अग्रसेन सभी यज्ञों में अधिष्ठाता स्वयं बने। ब्रह्मा का आसन गर्ग मुनि ने ग्रहण किया। प्रत्येक विभक्त 18 श्रेणियों का एक प्रतिनिधि यजमान बनकर उसमें शामिल हुआ। अग्रसेन इन महान यज्ञों को करवाने के लिए विद्वान ऋषियों को बुलाकर पुरोहित का दर्जा देते थे। कुल के प्रतिनिधि यज्ञ के पूर्ण होने के पश्चात् ऋषि के नाम को उपाधि मानकर गोत्र रूप में धारण कर लेते थे। महाराजा अग्रसेन ने 18 प्रतिनिधियों से 18 अश्वमेध यज्ञ 18 ऋषियों से करवाये। गर्ग ऋषि से गर्ग गौत्र, गौमिल ऋषि से गोयल, कश्यप से कुच्छल, कौशिक से कंसल, वशिष्ट से बिंदल, धौम्य से धारण, शंडिल्य से सिंघल, जैमिनी से जिन्दल, मैत्रय से मित्तल, तांडव से तिंगल, तैतिरेय से तायल, वत्स से बंसल, धन्यास से भंदल, नागेन्द्र से नागल, माडव्य से मंगल, औख से ऐरण, मुदगल से मधुकुल, गौतम से गोधर गौत्र स्थापित हुए। इन यज्ञों के दौरान ही महाराजा अग्रसेन की प्रवृत्ति में परिवर्तन आया। यज्ञों को जो जनकल्याण और विकास के लिए किये जाते थे उसमें जीवों को मारकर बलि देना उन्हें तर्क संगत नहीं लगा। तभी से उन्होंने राज्य में पशु-हिंसा बंद करने के आदेश दे दिए। आगे के यज्ञ बिना पशु बलि देकर सम्पन्न कराए गए। गोत्र प्रथा को मजबूती देने के उद्देश्य से महाराजा अग्रसेन ने एक ही गौत्र में विवाह निषेध किया। रक्त शुद्धि के लिए विज्ञान भी एक गौत्र में शादी हानिकारक मानता है। महाराजा अग्रसेन के बारे में उपरोक्त वर्णन लोकोक्ति और भाटों द्वारा रचित कविताओं के आधार पर है। कई विद्वानों ने पुराणों और धर्मग्रन्थों के आधार पर महाराजा अग्रसेन का इतिहास लिखा है जिनमें घटनाएँ सर्वथा भिन्न ही पढ़ने को मिलती है। श्री गोपाल कृष्ण अग्रवाल बेदिल ने सन् 2006 में ''अग्रसेन भागवत'' प्रकाशित करवाया जिसे वे प्रमाणिक मानते हैं उसमें अग्रसेन का इतिहास विभिन्न रूप में है। महाराजा अग्रसेन एक युग पुरूष थे उनके बारे में इस प्रकार के भिन्न-भिन्न वर्णन होना आश्चर्य की बात नहीं है। अग्रसेन के अठारह पुत्र होना और उनमें परस्पर विवाह होना तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता है। **

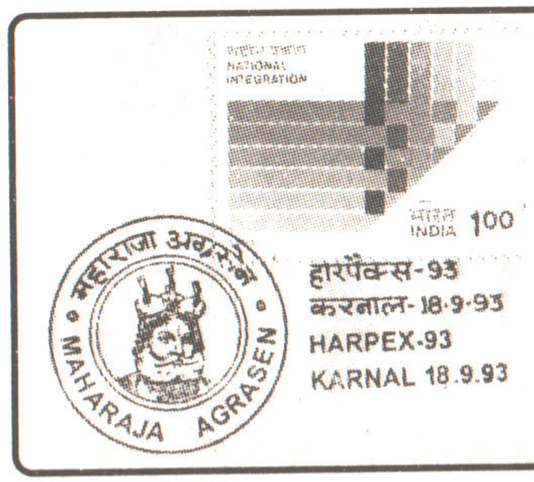


**महाराजा अग्रसेन की स्मृति में समय-समय पर अनेक स्थानों से विशेष आवरण जारी हुए हैं। 1993 में हारपैक्स ने महाराजा अग्रसेन की स्मृति में मोहर के साथ विशेष आवरण प्रकाशित किया है।**





# सर गंगाराम

*भारत सरकार ने सर गंगाराम के सम्मान में सर्वप्रथम 4–9–1977 को 25 पैसे की 30 लाख डाक टिकटें जारी की।*

सर गंगाराम का जन्म 13 अप्रैल, 1851 को पंजाब प्रान्त के मंगतवाला (इन दिनों पाकिस्तान देश में) में हुआ। इनके पिता दौलतराम मूलत: उत्तर प्रदेश प्रान्त के निवासी थे। कुछ समय बाद अमृतसर आकर रहने लगे और जिला न्यायालय में नकल-लेखक की नौकरी से जीवन-यापन करने लगे।

गंगाराम की प्रारिम्भक शिक्षा अमृतसर में स्वर्ग मंदिर के पास प्रोइवेट स्कूल में चार वर्ष की आयु में शुरू हुई। कुछ समय के बाद इन्हें कटरा अहलुवालिया की दूसरी पाठशाला में भेजा गया। गंगाराम वहाँ शिक्षा ग्रहण करने में बहुत कुशाग्र रहे और कुछ कक्षाएं एक वर्ष में दो उत्तीर्ण की। उन्होंने प्रथम प्रयत्न में कलकत्ता विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा दी जिसमें वे विफल रहे। दूसरी बार उन्होंने अमृतसर के राजकीय हाई स्कूल से परीक्षा दी और सफल हो गये। 1869 ई. में उन्होंने लाहौर राजकीय कालेज में प्रवेश लिया।

गंगाराम ने अभियन्ता बनने के लिए 1871 में रूड़की नगर में स्थित टोमसन इंजीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश प्राप्त किया। यहाँ वे 50 रुपये छात्रवृत्ति में से 25 रुपये महीने खर्च करते और 25 रुपये अपने पिता दौलतरात को भेज देते। इससे वे निश्चिन्त होकर पूजा-पाठ में समय बिताने लगे। गंगाराम ने 1873 में इंजीनियर की फाइनल परीक्षा सारे विश्वविद्यालय में तीसरा स्थान लेकर पुरस्कार में स्वर्णपदक प्राप्त करके उत्तीर्ण की।

गंगाराम की नियुक्ति सरकार के लोक निर्माण में 150 रुपये मासिक वेतन पर हुई। वरिष्ठ अभियन्ता को 1000 रुपये मासिक वेतन मिलता था। गंगाराम की पहली नियुक्ति गुरदासपुर डिवीजन में दो वर्ष बाद बदली डेरा गाजी खाँ में हुई वहाँ पर उनका सम्पर्क सर रोनर्ट सैंडविन जिलाधीश से हुआ। लाहौर नगर में प्रिन्स ऑफ वेल्स का आगमन होने वाला था उस अवसर के लिए विस्तृत निर्माण की योजना बनी जिसके लिए योग्य इंजीनियर की तलाश हुई। जिलाधीश सर रोबर्ट सेंडविन की सिफारिश पर उस काम का उत्तरदायित्व गंगाराम को सौंपा गया। इस कार्य को सफलतापूर्वक पूरा करने पर गंगाराम की ख्याति पूरे विभाग में हो गयी। दिल्ली दरबार, कांगड़ा घाटी में टेढ़ी-मेढ़ी और चढ़ती उतरती पहाड़ियों में रेलवे लाइन के बिछाने का काम पूरा किया। उन दिनों में देश के नगरों में पेयजल और ड्रेनेज की व्यवस्था नहीं के बराबर थी। इस क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त करने के लिए गंगाराम को

ब्रेडफोर्ड में प्रशिक्षण के लिए भेजा गया। वापिस आने के बाद सरकार में पेशावर की जल-योजना तैयार करवाई। उन्होंने अम्बाला, करनाल और गुजरावाला की पानी की समस्या का समाधान कर अपार ख्याति प्राप्त की। उनको लाहौर नगर का एक्जीक्यूटिव इंजीनियर बनाया गया, 12 वर्ष तक कार्य किया और पूरे लाहौर की कायाकल्प ही कर दी। अनेक दर्शनीय भवनों का निर्माण करवाया। दिल्ली में सन् 1900 में एडवर्ड अष्टम के राजगद्दी पर बैठने के उपलक्ष्य में दरबार के आयोजन के लिए विशाल और विस्तृत निर्माण करवाये। सन् 1903 ई० में गंगाराम को सेवा निवृत्ति मिली। उनकी निपुणता और विशेषज्ञता की धाक के कारण पटियाला के महाराजा ने उन्हें अपनी रियासत में निर्माण कार्यों के लिए आमन्त्रित किया। उन्होंने यहाँ भी नयनाभिराम भवनों का निर्माण करवाया।

पटियाला में सात वर्ष सतत कार्य करने के बाद गंगाराम अपने सुपुत्र सेवकराम के साथ इंग्लैंड गये। वहाँ से लौटे तो 1911 में इम्पीरियल दरबार की तैयारी के लिए वायसराय लार्डकर्जन ने विशेष रूप से निमार्ण कार्य उनको सौंपा। गंगाराम की आयु 70 वर्ष की हो गयी थी। परन्तु उनकी विशेषता, उनकी गणान्वेषक विशेषता, निर्माण में गुणवत्ता आदि गुण उनका पीछा नहीं छोड़ रहे थे। निर्माण में हर प्रकार की रुकावट का निवारण वे सहजता से कर लेते थे। दिल्ली में निर्माण कार्य के इस कार्य में निर्माण सम्बन्धित कई पेचदगियाँ आई। वाइसराय ने बीच में ही अचानक परिवर्तन किये। पर गंगाराम ही वे व्यक्ति थे जिन्होंने उनको मूर्तरूप दिया।

ब्रिटिश सरकार ने गंगाराम की सेवाओं के प्रतिफल में चेनाव नदी के क्षेत्र में उपहार स्वरूप 20 टुकड़े जमीन के दिये थे। जो ऊँची नीची और उसर थी जिनको वैज्ञानिक साधनों के प्रयोग से उपजाऊ बनाकर ख्याति प्राप्त की।

पहले महायुद्ध में ब्रिटिश साम्राज्य को भारत से शत्रुओं से रक्षा के लिए सेना की आवश्यकता हुई। भारतीय नौजवानों को सेना के भरती होने के लिए अन्य लाभ इतने आकर्षक नहीं लगे जो उनको वापिस आने पर कृषि योग्य जमीन का अलाटमेन्ट था। देश में जमीन तो बहुत थी परन्तु उसको कृषि योग्य बनाना एक जटिल समस्या थी। इस समस्या का निवारण ब्रिटिश साम्राज्य को गंगाराम में नजर आया। उन्होंने एक बड़ा जमीन का टुकड़ा उनको दिया जिसको गंगाराम ने कृषि योग्य और उपजाऊ बनाकर शासन को दे दिया। इससे खुश होकर ब्रिटिश साम्राज्य ने उनको ''नाइट'' की पदवी से विभूषित किया। गंगाराम ने स्वालम्बन से जीवन की सभी सुख-सुविधा, मान-सम्मान और ख्याति प्राप्त की। उन्होंने दीन और विपन्न लोगों की सेवा में तन-मन और धन लगा दिया। वे बाल-विवाह को समाज की प्रत्येक बुराई की जड़ मानते थे। इस प्रथा के कारण बालिकाओं को छोटी और अवोध आयु में वैधव्य का जीवन व्यतीत करने को मजबूर होना पड़ता था। इस बुराई को समाप्त करने के लिए गंगाराम ने 'विडोज काज' (widow's cause) पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। उन्होंने 'बाल विधवा' के सुधार के लिए प्रतिदिन एक विवाह कराने का संकल्प लिया जिसे उन्होंने पूरा भी किया।





'विधवाश्रम भी स्थापित किया।

शिक्षा को गंगाराम बहुत महत्त्व देते थे इसके लिए उन्होंने लाहौर में मालरोड पर स्थित एक भवन सरकार को दान में दिया। इसी क्रम में मदन मोहन मालवीय की बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के भवनों के निर्माण में निःशुल्क कार्य किया और एक लाख की बड़ी रकम देकर अनुदान भी दिया। गंगाराम की धार्मिक प्रवृत्ति उनकी गो-सेवा से प्रतीत होती है अपने फार्म में विदेशों से अधिक दूध देने वाली गऊएं मंगवाकर उनका पालन किया।

सर गंगाराम समाज में सुधार लाने के लिए एक क्रान्ति लाना चाहते थे। इस ध्येय से उन्होंने उसके हर पहलू के दोष को छुआ और संस्था बनाकर कार्य किया। 'लेड़ी मेनयार्ड इंडस्ट्रीयल स्कूल फोर हिन्दू एण्ड सिख स्थापित किया। 1923 ई० में उन्होंने 'सर गंगाराम ट्रस्ट' की स्थापना की जिसके आधीन उन्होंने अपने कई भवन और सम्पत्ति अर्पित कर दी। जिनकी कीमत उन दिनों लगभग 30 लाख रुपये थी और जिनसे 25 हजार रुपये की वार्षिक आय थी। लाहौर में ''सर गंगाराम चैरीटेबल डिस्पेंसरी'' की स्थापना की। सर गंगाराम सच्चे वैश्य अग्रवाल मनोवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्होंने उपरोक्त विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से लाखों रुपये दीन और दुखियों के कल्याण पर खर्च किये। एक अपाहिज आश्रम स्थापित किया। परन्तु उनका व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त सादा रहा। वे एक ही पलंग पर 46 वर्ष तक सोये। सर गंगाराम ने अपने वैश्य अग्रवाल समाज के लिए भी काम किया। 1892 में वैश्य महासभा की अध्यक्षता की जिसमें समाज के सुधार और विकास पर विस्तृत चर्चा की गई। इसकी 100वीं वर्षगाँठ पर मेरठ नगर में 1992 में समारोह किया गया।

तत्कालिक सरकार पर सर गंगाराम की योग्यता, अनुभव और विशेषता की पूरी धाक थी। भवन निर्माण संबन्धित कार्यों में आज भी उनकी दी हुई विशेषता का प्रयोग किया जाता है। सरकार को देश के किसी भी क्षेत्र में कोई सुधार लागू करना होता तो सर गंगाराम से अवश्य परामर्श लिया जाता था। भूमि पर लगान और कृषिक समस्याओं के समाधान के लिए उनको रायल एग्रीकल्चरल कमीशन में भारतीय सदस्य नियुक्त किया गया। इसकी एक बैठक इंग्लैंड में बुलाई गई, जिसकी अध्यक्षता लार्ड लिनलिथयमों ने करनी थी। सर गंगाराम भी उस मीटिंग में भाग लेने गये थे और वे वहाँ लंदन में रूके थे। अचानक 10 जुलाई, 1927 को उनका देहावसान हो गया था। उनकी अन्त्येष्टि वहाँ पर ही 'गोल्डन ग्रीन क्रिमेटोरियम' में की गई। कुछ भस्मी हरिद्वार गंगा में प्रवाहित की गई कुछ को लाहौर में उनके द्वारा स्थापित संस्थाओं में दर्शनार्थ रखी गई।

**

# डॉ. राममनोहर लोहिया

*भारत सरकार ने डॉ. राम मनोहर लोहिया के सम्मान में सर्वप्रथम 12–10–1977 को 25 पैसे की 30 लाख तत्पश्चात् 23–3–1997 को पुनः 1 रूपये की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।*

डॉ. लोहिया का जन्म 23 मार्च 1910 ई. में उत्तर प्रदेश प्रान्त के जिला फैजाबाद के गाँव अकबरपुर में हुआ। इनके पिताजी का नाम हीरालाल लोहिया था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में हुई। कलकत्ता के विद्यासागर कालेज से बी.ए. की परीक्षा 1929 में उतीर्ण की। डॉ. राम मनोहर लोहिया की योग्यता और पात्रता को देखते हुए, कलकत्ता की अग्रवाल सभा ने इनको विदेश में आगे शिक्षा प्राप्त करने का प्रस्ताव रखा। डॉ. लोहिया जानते थे कि उनके देश पर ब्रिटिशों का राज्य है और वे किस प्रकार शोषण और अत्याचार करके इंगलैण्ड पैसा भेज रहे हैं, इस कारण से डॉ. राम मनोहर लोहिया ने इंगलैण्ड जाकर आई.सी.एस. या कोई उच्च शिक्षा प्राप्त करना अस्वीकार कर दिया। डॉ. राम मनोहर लोहिया के प्रखर देशप्रेम का यह पहला उदाहरण था। डॉ. लोहिया इंगलैण्ड के स्थान पर जर्मनी गये और 1932 ई. में हम्बोल्ट यूनिवर्सिटी से ''नमक और सत्याग्रह'' विषय पर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की और 1933 में स्वदेश लौट आये।

डॉ. राममनोहर लोहिया राष्ट्र सेवा के उद्देश्य से आजीवन अविवाहित रहे। वे पक्के गांधीवादी थे। इन्होंने महात्मा गाँधी के प्रत्येक स्वाधीनता संग्राम के आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया और लगभग 40 (चालीस) बार जेल गये। दूसरे विश्व युद्ध में ब्रिटिश शासन द्वारा भारत को भी घसीटा गया तो इन्होंने इसका विरोध किया। ये प्रचार के महत्त्व को जानते थे। उन्होंने गुप्त रेडियों स्टेशन स्थापित किया जो अंग्रेज सरकार द्वारा पकड़ा गया। स्वाधीनता प्राप्त होने के बाद महात्मा गाँधी ने कांग्रेस पार्टी को समाप्त करके अपनी अलग पार्टी बनाने की सलाह दी। डॉ. लोहिया ने इसका पूर्ण समर्थन किया। कांग्रेस पार्टी से सदा के लिये नाता तोड़कर 1952 में प्रजा सोसलिस्ट पार्टी और 1956 में सोसलिस्ट पार्टी की स्थापना की और 1963 में वे लोकसभा के सदस्य चुने गये।

लोकतन्त्र राज प्रणाली में विरोधी पार्टी का बड़ा महत्त्वपूर्ण दायित्व होता है।





पंडित जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस पार्टी के नेता और देश के प्रधानमंत्री थे। डॉ. लोहिया को उनका विरोधी माना गया है। जब नेहरू के सामने चुनाव में खड़े होने का किसी में साहस नहीं होता था तब उन्होंने उनके विरुद्ध चुनाव लड़ा। आप अच्छे वक्ता थे। लोकसभा में पहले ही भाषण में सुननेवालों को स्तब्ध कर दिया था। देश के 27 करोड़ व्यक्ति केवल 3 आने (19 पैसे) प्रतिदिन खर्च करके जीवन निर्वाह करते हैं। उन्होंने देशवासियों और प्रधानमंत्री में असमानता को सप्रमाण प्रकट करते हुये बताया था कि प्रधानमंत्री के एक कुते पर 3 रूपये प्रतिदिन खर्च होता है और उनकी सुरक्षा पर पच्चीस-तीस हजार रूपये प्रतिदिन खर्च होते हैं। उन्होंने अमीरी और गरीबी की विषमता को प्रकट करते हुए कहा था कि देश का खेत में काम करने वाला एक मजदूर 12 आने (75 पैसे) प्रतिदिन कमाता है और जबकि एक व्यापारिक घराने की प्रतिदिन की आय तीन लाख रूपये हैं। डॉ. लोहिया ने चुनौती दी थी कि कोई व्यक्ति यदि इन तथ्यों को असत्य प्रमाणित कर दे तो वे लोकसभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे देंगे।

डॉ. लोहिया देश में सामन्तवाद और सरकारी अपव्यय का विरोध करते थे। सरकारी कम्पनी द्वारा क्षय का टीका 2(दो) आने (12 पैसे) में उत्पादन करने के बार 12 (बारह) आने (75 पैसे) में बेचना एक प्रकार से निर्दयी डाका मानते थे। किसी भी नेता को विशेष विशेषणों के साथ पुकारना उचित नहीं मानते थे।

डॉ. लोहिया के अनेक संस्मरण हैं जो दिल को छू जाते हैं। वे जो बोलते थे उसको जीवन में भी उतारते थे। वे सरकारी अपव्यय के खिलाफ थे कभी अधिवेशन या बैठक में जाते थे तो वे महंगे होटल में न ठहरकर, उस स्थान के किसी व्यक्ति या साधारण परिवार में ठहरते, जहाँ न के बराबर खर्च होता। एक बार तो डॉ. लोहिया को वाराणसी में गंगा के किनारे एक नाव पर सोते हुए पाया गया था। डॉ. लोहिया आम प्रजा के हित का बहुत ध्यान रखते थे। उनकी मृत्यु 12 अक्टूबर 1967 को हुई थी। ये अस्वस्थ चल रहे थे। भारत सरकार ने उनको उपचार के लिये विदेश भेजने का प्रस्ताव किया, जिसको उन्होंने अस्वीकार कर दिया। उपचार के लिये डाक्टरों का एक दल अस्पताल में उनको देखने के लिये आया तो, डॉ. लोहिया ने उनको कहा कि आप डॉक्टरों की सामान्य जनता को अधिक आवश्यकता है। आप मेरी चिन्ता न करो। जिस विलिंडन अस्पताल में इनकी मृत्यु हुई थी उनका नाम बदल कर ''राम मनोहर लोहिया अस्पताल'' कर दिया गया। अवध विश्वविद्यालय को अब ''राम मनोहर लोहिया विश्वविद्यालय'' के नाम से जाना जाता है।

**

# डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल

*भारत सरकार ने काशीप्रसाद जायसवाल के सम्मान में सर्वप्रथम 1981 में 35 पैसे की 20 लाख डाक टिकटें जारी की।*

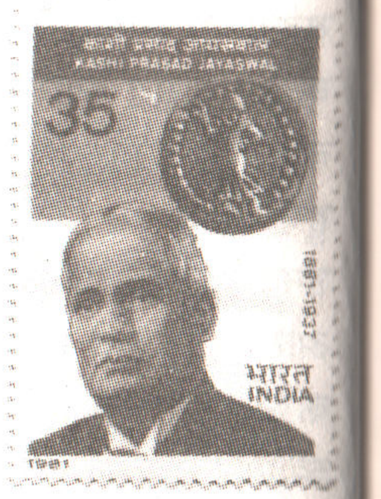


काशीप्रसाद जायसवाल का जन्म 27 नवम्बर 1881 को हुआ। उनके जन्म स्थान के बारे में मतभेद हैं राहुल सांकृत्यान के अनुसार उनका जन्म अपने ननिहाल वासलीगंज में हुआ था कुछ लोग मानते हैं कि उनका जन्म अपने पितृ गांव मिर्जापुर में हुआ था जो उत्तर प्रदेश प्रान्त में है। पिताजी का नाम श्री साहु महादेव प्रसाद था उन्होंने स्नातक तक की शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्राप्त की। तत्पश्चात् उच्च शिक्षा प्राप्त करने इंग्लैंड गये। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी से भारतीय पुरातन इतिहास में डिग्री प्राप्त की और कानून की शिक्षा के लिए लिंकन्स इन में प्रवेश प्राप्त किया। देश वापिस आकर कोलकत्ता में वकालत करनी आरम्भ की। यहाँ पर उनका सम्पर्क सर आशुतोष मुखर्जी से हुआ। उनके सुझाव पर जायसवाल ऐतिहासिक अनुसंधान के कार्यों में अधिक समय देने लगे। परिणामस्वरूप 1913 में उनका पहला लेख 'हिन्दू पोलिटी' मोडर्न ट्रिव्यू' में प्रकाशित हुआ। इसमें भारत को पुरातन इतिहास पर नया प्रकाश डाला। इन नये अनुसंधानों के आधार पर उन्होंने दो महत्त्वपूर्ण इतिहास की पुस्तकों की रचना की 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया। 15A to 350AD तथा। इण्डियन हिस्ट्री 700BC to 770AD में भारत के इतिहास की उस समय इतनी जानकारी नहीं थी उस पर तथ्यों के साथ प्रकाश डालना; देश और इतिहासकारों के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण देन है। इसी क्रम में जहाँ हिन्दी भाषा का इतिहास राय श्याम सुन्दर के कथानानुसार 1000 ई. के पास चन्दर वरदाई की रचना से माना था। डॉ. काशीप्रसाद ने उसे 750 ई. से होना प्रमाणित किया। उनका अभिमत था कि हिन्दी भाषा की दृष्टि से पिंगल भाषा का महत्त्व है। उनको एक पुरातन पाण्डुलिपि प्राप्त हो गइ थी वह पुरबिया भाषा में थी जिसे मैथिल कवि 'देसिल बयाना' कहते थे उसका अस्तित्व जायसी के पदमावत से पूर्व बिहार में था।

डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल मुद्रातत्व के महान् ज्ञाता थे उन्होंने पुराने मौर्या और गुप्त काल के सिक्कों को सूचिब) किया। उनकी जानकारी भावी पीढ़ी को प्रदान की सन् 1916 में बिहार राज्य की हाई कोर्ट की स्थापना पटना नगर से हुई। काशीप्रसाद जायसवाल तब अपनी कर्मभूमि वहाँ ले गये। उन्होंने वहाँ कई पुरातन ऐतिहासिक स्थलों की खुदाई करवाई। उनको अनेक भारतीय संस्कृति सम्बन्धी वस्तुएँ प्राप्त हुई। वे सभी अभी भी पटना संग्राहलय में सुरक्षित प्रदर्शित हैं। डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल को कई बहुमुखी प्रतिभा के लिए पटना विश्व विद्यालय ने डॉ. ऑफ फिलोसॉफी' की मानद् उपादि से विभूषित किया। यह विधि का विधान है कि प्रतिभाशाली विभूतियों को लम्बी आयु प्राप्त नहीं हो पाती है उनका 4 अगस्त 1937 को देहावसान हो गया।





# घनश्याम दास बिड़ला

*भारत सरकार ने घनश्याम बिड़ला के सम्मान में सर्वप्रथम 11 जून 1984 को 50 पैसे के 20 लाख डाक टिकटें जारी की।*

घनश्याम दास बिड़ला का जन्म 14 अप्रैल 1894 को राजस्थान प्रान्त के पिलानी नगर में हुआ था उस दिन राम नवमी का दिन था जो हिन्दू धर्म की मान्यताआं के अनुसार वर्ष का बहुत ही पवित्र दिन होता है क्योंकि इस दिन पुरूषोत्तम राम ने पृथ्वी पर देह रूप में अवतार लिया था। बिड़ला जी के पिताजी का नाम बल्देवदास बिडला और माताजी का नाम योगेश्वरी देवी था। परिवार की वित्तिय स्थिति कमजोर हो जाने के कारण उनके पिता शिवनारायण को जोखिम भरी यात्रा ऊँठ की पीठ पर बीस दिन की सवारी करते हुए बम्बई जाना पड़ा। यहाँ पर अफीम का व्यवसाय आरम्भ किया। लाखों रूपयों की आमदनी हुई जिससे पिलानी में हवेली बनवाई और एक कुँआ भी खुदवाया। कुए से मीठा पानी मिलने से उनके भाग्यशाली होने का समाचार सभी जगह फैल गया।

घनश्याम दास की प्रारम्भिक शिक्षा उसके पितामह शिवनारायण द्वारा स्थापित पाठशाला में हुई। तत्पश्चात उनको कलकत्ता भेज दिया गया। उन्होंने 'विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय' में प्रवेश तो लिया परन्तु शिक्षा में रूचि नहीं होने के कारण पाठशाला से बाहर समय बीतने के बाद घर लौट आते। इस भटकाव ने घनश्याम दास को जीवन की वास्तविकता के दर्शन हुए। 1906 में उसके भाई रामेश्वर और उनका 13 वर्ष की आयु में विवाह हुआ। उसकी पत्नी दुर्गादेवी सेठ रामप्रसाद सोमानी की पुत्री थी। उसी वर्ष बिड़ला जी ने शेयर और दलाली का व्यवसाय करना आरम्भ कर दिया था।

1909 का वर्ष बिड़ला जी के जीवन का सबसे अधिक वेदना का वर्ष रहा उनके दादाजी की तपेदिक से मृत्यु हो गई। इसी रोग से उनकी पत्नी का प्रसव के समय अन्त हो गया।

घनश्याम दास बिड़ला जी किनारीदार धोती, कमीज व मौजों में मारवाड़ी व्यापारी के भांति सादी वेषभूषा में रहते थे। एक बार मै. ब्रिटिश जूट स्टर्लिंग कम्पनी के कार्यालय में व्यापार के सम्बन्ध में गये। लेकिन अंग्रेज अधिकारी ने उनसे मिलने से इंकार कर दिया। इससे बिड़लाजी के अहम् को करारी चोट लगी। दूसरी घटना मैं. रोडा कम्पनी की ट्रांसपोर्ट कम्पनी से गोदाम तक आने तक कारतूसों और हथियारों की चोरी के कारण उनके विरुद्ध गिरफ्तारी का वारंट जारी होना था। जिससे परिवार के प्रयत्नों से बच पाये।

इन घटनाओं ने बिड़लाजी को गम्भीर और व्यवस्थित ढंग से जीवन चलाने के सिद्धान्तों को अपनाने के मार्ग पर चलाया। वे व्यापार को पूरे परिश्रम और लग्न से चलाने लगे। देश में महात्मा गाँधी स्वतन्त्रता प्राप्त करने की बागडोर सम्भाले हुए थे। 1919 में पहला विश्वयुद्ध समाप्त हो गया था उन्होंने तब उद्योग स्थापित करने का फैसला किया। एक कपड़ा और एक जूट मिल लगाने के लिए शेयर चालू किये। दलाली में इमानदारी के कारण इसमें अभूतपूर्व सफलता मिली जिसे जानकर अंग्रेज व्यापारी और शासक सकते में आ गये। उन्होंने बिड़ला जी की परियोजनाओं में हर प्रकार के अवरोध खड़े किये। इसके

लिए एक प्रख्यात सोलिस्टिर, देवीप्रसाद खेतान को साथ लिया। इससे बिड़ला जी के उद्योग धन्धे संविधान के अनुसार मजबूत आधार पर खड़े हो गये। 1927 ई. में इंडियन चैम्बर ऑफ कामर्स एण्ड इन्डस्ट्रीज की स्थापना की। 1921 में बंगाल लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य मनोनीत हुए। 1923 में श्री श्रीप्रकाश के विरुद्ध मालवीय जी की स्वराज्य पार्टी से चुनाव लड़ा और विजयी हुए।

महात्मा गाँधी स्वाधीनता आन्दोलन के साथ स्वदेशी नीति को भी अपनाने के लिए भारतीयों को प्रेरित करते थे। जो बिड़ला जी के लिए उद्योगों में उन्नति और प्रगति के लिए वरदान सिद्ध हुए। इससे अंग्रेज व्यापारियों में खलबली मच गई क्योंकि उनकी पूंजी को हानि होने की सम्भावना थी। शासन में देशी उत्पादन पर टैक्स लगाया और मुद्रा परिवर्तन में असमानता पैदा कर दी। इससे इंगलैण्ड से आयातित तैयार माल सस्ता बिकने लगा। घनश्याम दास बिड़ला उस अवधि में कांग्रेस पार्टी और ब्रिटिश साम्राज्य के बीच पुल का काम करने लगे थे। एक ओर वे कांग्रेस को ब्रिटिश नीति और कार्यक्रमों की सूचना देते थे दूसरी और ब्रिटिश शासन को गाँधी की नीति अपनाने के लिए तैयार करने के लिए उनसे विचार विमर्श करते थे। 19-01-1922 में उन्होंने बंगाल के दो समाचार पत्र 'द बंगाल' और 'न्यू एम्पायर' खरीदे जो राष्ट्रीय विचारधारा के मुख्यपत्र रहे।

घनश्यामदास बिड़ला जी अनपढ़ होने को दासता और गरीबी के लिए शाप मानते थे उन्होंने अशिक्षा को समाप्त करने के लिए प्रारम्भिक और उच्च स्तरीय विद्यालयों की स्थापना की जिनमें पिलानी में बिड़ला इंस्टीटयूट ऑफ टैक्नोलोजी एण्ड साइन्स, तकनीकी शिक्षा संस्थान, कई नगरों में पब्लिक स्कूल और हायर सैकेन्ड्री स्कूल, भिवानी में टैक्नालोजिकल इंस्टीटयूट ऑफ टैक्सटाइल तथा रांची में बिड़ला स्कूल ऑफ टेक्नोलोजी एण्ड साइंस आदि मुख्य हैं। ये शिक्षण संस्थान 'बिड़ला एजुकेशन ट्रस्ट' के आधीन चलते हैं। जिसकी स्थापना भी बिड़लाजी ने की थी। बिड़ला जी धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे वे नित्यदिन भगवत् गीता का पाठ करते थे। धार्मिक आस्था के साथ मानवता के प्रति दया भाव भी प्रचुर थी। दिल्ली में बिड़ला मंदिर बनवाकर महात्मा गाँधी के हाथों उद्घाटन करवाया और उसी दिन से हरिजनों का प्रवेश भी करवाया। वे छूआछूत को नहीं मानते थे। बिड़ला जी तीर्थ और धाम आदि दर्शनार्थ जाते रहते थे केदारनाथ और बद्रीनाथ के दर्शन किये। फिर यमुनोत्री और गंगोत्री भी गये। केदारनाथ की 16 कि.मी. की खड़ी चढ़ाई है। बिड़ला जी ने 1982 में 88 वर्ष की आयु में केदारनाथ की यात्रा की। वे शंकराचार्यों को हिन्दू धर्म का रक्षक मानते थे। इन्हीं सात्विक विचारों का प्रभाव ही था कि बिडलाजी की दूसरी पत्नी महादेवी का 1926 में जब उनकी आयु मात्र 32 वर्ष थी स्वर्गवास हो गया था। पुनः विवाह करना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपने पुत्रों और पुत्री के लालन-पालन में समय दिया। देश के स्वाधीन होने के पश्चात् बिड़ला जी ने गरीब जनता की दशा सुधारने के लिए सरकार को सुझाव दिये। 1952 में युनाइटेड कामर्शियल बैंक की स्थापना की। 1958 में हिंडालको और 1960 में मैसूर सिमेन्ट कारखाना स्थापित किया। इसके बाद रत्नाकर शिपिंग कम्पनी के द्वारा विदेशों से तार जोडने का प्रयत्न किया। बिडलाजी के पौत्र आदित्य बिड़ला ने विदेश में बैंकाक में 'इंडोलाइ सिंथेटिक्स कम्पनी लि.' के द्वारा उद्योग आरम्भ किया। बिड़ला ग्रुप इतना विस्तृत है कि उसका विवरण कम जगह पर दिया जाना सम्भव नहीं है। जिनकी गिनती अब दो सौ से ऊपर है।

घनश्याम दास बिड़ला जी की मृत्यु 11 जून 1983 को विदेश में लन्दन नगर में हुई। उनकी इच्छानुसार उनका दाह संस्कार लंदन के गोल्डर्स ग्रीन स्थान पर किया गया। तत्पश्चात् अस्थियाँ देश में लाकर गंगोत्री में प्रवाहित की गई। **





# डॉ. राजा सर मुत्तैया चेट्टियार

*भारत सरकार ने डॉ. राजा सरमुतैया चेट्टियार के सम्मान में सर्वप्रथम 21 दिसम्बर 1987 में 60 पैसे की 10 लाख डाक टिकटें जारी की।*

डॉ. राजा सर मुत्तैया चेट्टियार का जन्म 5 अगस्त, 1905 को हुआ था। उनके पिता डॉ. राजा सर अण्णामलै चेट्टियार नाटुकोटै नागरात समुदाय के प्रतिष्ठित सदस्य थे। उन्होंने अपनी शिक्षा अधिकांश मद्रास (अब चैन्नई) में प्राप्त की। 1922 में वे प्रेसीडेंसी कॉलेज से स्नातक हुए। उसके बाद अपने परिवार के व्यवसाय के सिलसिले में बैंकिंग में विशेषज्ञता हासिल करने के लिए बर्मा चले गए।

शिक्षा के बाद डॉ. चेट्टियार ने समाज के प्रत्येक क्षेत्र में सक्रिय योगदान दिये। मद्रास विधान परिषद के सदस्य बने जिसमें उन्होंने दक्षिण भारतीय वाणिज्य और उद्योग मंडल का प्रतिनिधित्व किया। इस मंडल के साथ वे 50 वर्षों तक सम्बद्ध रहे और 1941 में इसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। 1929 में वे प्रान्तीय बैंकिंग जांच आयोग के और 1931 में मद्रास प्रान्तीय मताधिकार (फ्रैंचाइज़) जांच समिति के सदस्य नियुक्त हुए। 1929 में वे मद्रास नगर निगम के सदस्य बने और 1933 तथा 1934 में उसके महापौर चुने गए। 1943 में वे भारतीय वाणिज्य और उद्योग मण्डल महासंघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। वे इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया (जो अब स्टेट बैंक आफॅ इंडिया है) तथा इंडियन बैंक से भी संबद्ध रहे।

शिक्षा के प्रति रुचि उन्हें विरासत में मिली थी। श्री मीनाक्षी कॉलेज, चिदम्बरम् को एक विश्वविद्यालय का केन्द-बिन्दु बनाने में उन्होंने अपने पिता को सहयोग दिया। जस्टिस पार्टी के मुख्य सचेतक और विधान सभा अध्यक्ष के रूप में अपना राजनीतिक जीवन आगे बढ़ाते हुए भी शिक्षा के प्रति उनकी रुचि बनी रही। 1936 में उन्हें शिक्षा, जन-स्वास्थ्य और उत्पादन-शुल्क विभाग का मंत्री बनाया गया और एक वर्ष से अधिक समय तक वे मद्रास विश्वविद्यालय के प्रो. चांसलर भी रहे। वे 33 वर्षों तक मद्रास विश्वविद्यालय के सिंडीकेट तथा इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ टैक्नॉलाजी, मद्रास के प्रबंध मंडल में भी रहे।

1948 में अण्णामलै विश्वविद्यालय के प्रो. चांसलर बनने के बाद उस विश्वविद्यालय का काफी विस्तार हुआ और उसमें शिक्षा, ललित कला, संस्कृति, विधि और चिकित्सा के संकाय खुल गए। साथ ही सामुद्रिक जीव-विज्ञान और

भाषा-विज्ञान में उच्चतर अध्ययन के दो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग केन्द्र भी स्थापित हो गए। इसी दौरान इंजीनियरी और टैक्नॉलाजी का विकास होकर वह विभाग स्नातकोत्तर केन्द्र बन गया। अण्णामलै नगर में मुत्तैया पोलीटैकनीक और चेट्टिनाड में अण्णामलै पोलीटेकनीक खोल दिए गए।

तमिल भाषा और साहित्य, तमिल संगीत और संस्कृति के अध्ययन में उनकी विशेष रुचि थी। तमिल के लिए की गई उनकी सेवाओं के कारण उन्हें ''तमिल इसै कावलर'' की उपाधि मिली।

1939 में विपक्ष के नेता के रूप में उन्होंने कुशल निष्पक्ष और संतुलित सांसद के रूप में नाम कमाया। तब उनके पास स्थानीय प्रशासन और हिन्दू धार्मिक निधियों का कार्यभार था। 1941 में उन्हें नाइट की उपाधि दी गई। 1946 में वे नई दिल्ली में संविधान-सभा के सदस्य चुने गए।

व्यापार की दुनिया में वे महत्वपूर्ण व्यक्ति थे और अन्य पदों के साथ-साथ चेट्टिनाड सीमेंट कार्पोरेशन लिमिटेड, मद्रास, मटुरा कोट्स लिमिटेड, समेकित काफी लिमिटेड, कुर्ग और कुनूर टी एस्टेट, कुनूर के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित रहे। 12 मई, 1984 को उनका देहावसान हो गया।

**





# मोहनलाल सुखाड़िया

*भारत सरकार ने मोहनलाल सुखाड़िया के सम्मान में सर्वप्रथम 2 फरवरी 1988 को 60 पैसे की 10 लाख डाक टिकटें जारी की।*

मोहललाल सुखाड़िया का जन्म 31 जुलाई, 1916 को राजस्थान प्रान्त के झालावाड़ में हुआ था। उनके पिताजी का नाम श्री पुरुषोत्तम दास सुखाड़िया था। नाथद्वारा और उदयपुर से अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के बाद उन्होंने बंबई में विद्युत इंजीनियरी का अधययन किया और इलैक्ट्रिक इंजीनियरिंग में डिप्लोमा प्राप्त किया। उनका विवाह 11 जून, 1938 को इन्दूबाला के साथ हुआ। गृहस्थ जीवन उनके देशप्रेम को रोक नहीं सका। वे प्रजा मंडल आंदोलन से 1939 में सक्रिय रूप से जुड़ गए। उन्हें अपने विद्यार्थी जीवन में ही स्वतंत्रता संग्राम में आना पड़ा।

1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान उन्हें डेढ़ वर्ष की कैद हुई। 1946 में वे तत्कालीन मेवाड़ राज्य द्धउदयपुरऋ के नागरिक आपूर्ति, सार्वजनिक निर्माण, राहत और पुनर्वास मंत्री बने। राजस्थान में दलित जनता के उत्थान के लिए ठक्कर बापा की कल्याण योजनाओं से भी वे संब) रहे।

राजस्थान राज्य का गठन होने के बाद 1948 में उन्होंने विकास मंत्री के रूप में राज्य मंत्रिमंडल में कार्यभार संभाला। 1951-52 में वे नागरिक आपूर्ति, कृषि एवं सिंचाई मंत्री रहे। 1952 में हुए पहले आम चुनावों में राजस्थान विधाान सभा के लिए चुने जाने पर सुखाड़िया राजस्व, कृषि एवं अकाल राहत मंत्री बने। 13 नवंबर, 1954 को वे राजस्थान के मुखमंत्री बने और 1971 तक इस पद पर कार्य करते रहे।

मुख्य मंत्री के रूप में राज्य में भूमि सुधाार और पंचायती राज शुरू करने में उन्होंने एक मार्गदर्शक की भूमिका निभाई। राजस्थान को एक सुदृढ़ राज्य बनाने की समस्या का उन्होंने स्थिरचित होकर सामना किया। उनके मुख्यमंत्री काल में राजस्थान का सुनियोजित विकास और औद्योगिकीकरण हुआ। उन्होंने राज्य में शिक्षा तथा चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार को भी प्रोत्साहित किया। 1961 में उन्हें अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की कार्यकारिणी समिति का सदस्य नामित किया गया।

1972 और 1977 के बीच की अवधि के दौरान वे कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु के राज्यपाल नियुक्त किए गए।

1980 में वे उदयपुर संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से लोक सभा के लिए चुने गए।

उनका 2 फरवरी, 1982 को देहावसान हो गया।

**

# राष्ट्ररत्न–बाबू शिवप्रसाद गुप्त

*भारत सरकार ने शिवप्रसाद गुप्त के सम्मान में सर्वप्रथम 26–06–1988 को 60 पैसे की 10 लाख डाक टिकटें जारी की।*

बाबू शिव प्रसाद गुप्त का जन्म 18 जून 1883 तदानुसार असाढ कृष्णपक्ष सम्वत् 1940 को वाराणसी नगर में हुआ। उनके पिता नरोत्तम बनारस नगर के धनाढ्य व्यवसायी थे।

शिव प्रसादजी जब 6 वर्ष के थे उनके पिता का देहान्त हो गया। पारिवारिक व्यवसाय और लालन-पोषण पिताजी के बड़े भाई मोती चन्द्र ने सम्भाला। उनकी शिक्षा का प्रबन्ध हिन्दी, फारसी और गणित के अध्यापकों द्वारा घर पर ही पढ़ाने के लिए नियुक्ति करके किया गया। एफ.ए. की शिक्षा समाप्त करते हुए शिव प्रसाद के जीवन में दो हृदय विदारक घटनायें हुई। परम मित्र और रिश्ते में चाचा देवी प्रसाद का देहान्त हुआ। तत्पश्चात् वह जिस भाई हरप्रसाद के साथ 15 वर्ष तक खेले, लड़े, झगड़े, प्रेम किया वह भी चल बसा।

शिव प्रसाद गुप्त का विवाह 13 वर्ष की आयु में भगवती देवी के साथ हुआ। अंग्रेजी विषय लेकर एफ.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। 1904 ई. में उनका राजनीतिक जीवन आरम्भ हुआ। जब उनकी आयु केवल 21 वर्ष थी वे कांग्रेस पार्टी के अधिवेशन में एक कार्यकर्त्ता के रूप में भाग लेने लगे। इससे पहले 'काशी अग्रवाल सभा' और 'अग्रवाल स्पोर्टस क्लब' के सदस्य बनकर उन्होंने अपनी एक ताकतवर मित्र मंडली तैयार की। शिव प्रसाद के आग्रह पर अगले वर्ष 1905 ई. में काशी में राजघाट पर कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, जिसकी अध्यक्षता गोपाल कृष्ण गोखले जी ने की। 1906 में वे कलकत्ता के राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन में शामिल होने गये। वहाँ बिपिन चन्द्र पाल के शिक्षा सम्बन्धित विचारों से प्रभावित होने के कारण वे सरकारी शिक्षा नीति के विरोधी बन गये। उनके द्वारा प्रकाशित 'स्वराज' पत्र के वे नियमित पाठक बन गये। 1911 से 1913 तक 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' की स्थापना के लिए मदन मोहन मालवीय के साथ दौरा करते रहे। 30 अप्रैल 1913 को इंग्लैंड में लाला लाजपतराय के साथ रहने का अवसर मिला। स्वदेश आने की सोच ही रहे थे कि प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया। स्वदेश आने के साधन नहीं मिलने के कारण जगदीश चन्द्र बसु के साथ अमेरिका गये और वहाँ उन्होंने अमेरिका की शिक्षा प्रणाली का अध्ययन किया। सामाजिक जागृति और सांस्कृतिक स्तर की जानकारी मिली। चीन, जापान की यात्रा के बाद सिंगापुर के रास्ते अपने देश आ रहे थे तो उनको पकड़ कर जेल में डाल दिया गया। जिसका विवरण 'पृथ्वी प्रदक्षिणा' नाम की पुस्तक में दिया गया है। इन गतिविधियों से ब्रिटिश सरकार उन पर शंका करने लगी। इस दशक में घटनाएँ तेजी से हो रही थी। इनमें गाँधी जी का दक्षिणी





अफ्रीका से स्वदेश लौटना, जलियावाला बाग हत्याकांड प्रमुख हैं।

शिव प्रसाद गुप्तजी का 'सेवा उपवन' राष्ट्रीय स्तर के कांग्रेसी नेताओं का राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया। साइमन कमिशन के बहिष्कार का निर्णय यहाँ पर ही लिया गया। जलियाँवाला बाग हत्यकांड पर कांग्रेस द्वारा बैठाई गई जाँच कमेटी की रिपोर्ट पर महात्मा गाँधी, देशबन्धु दास एवं मोतीलाल नेहरू के हस्ताक्षर यहाँ पर ही हुए थे। देशबन्धु दास और चितरंजन दास ने इसी 'सेवा उपवन' में बैठकर कांग्रेस कार्य समिति का गठन किया। शिवप्रसाद कांग्रेस के अतिरिक्त किसी अन्य दल के गठन का विरोध करते थे। उनका मत था कि इससे कांग्रेस कमजोर होती है। 'सेवा उपवन' में प्रत्येक व्यक्ति के आने, रहने, खाने, पीने व सोने तक की व्यवस्था स्वयं करते और खर्च भी वहन करते थे।

कांग्रेस पार्टी के आदेशानुसार शिव प्रसाद गुप्त म्युनिसिपल बोर्ड के चुनाव में निर्विरोध चुने गये। इसमें श्रीप्रकाश, डॉ. भगवान दास और डॉ. सम्पूर्णानन्द प्रमुख सहयोगी थे। इस बोर्ड में 'साम्राज्य दिवस, दरबार दिवस' की सार्वजनिक छुट्टियाँ रद्द करवाकर, महात्मा गाँधी के जेल जाने के दिन 19 मार्च, लोकमान्य तिलक से स्वर्गवास होने के दिवस' 1(एक) अगस्त एवं जलियाँवाला हत्याकांड दिवस 13 अप्रैल की छुट्टियाँ घोषित करने का फैसला किया गया।

राजनीतिक गतिविधियों के साथ शिव प्रसाद गुप्त ने समाज सेवा में ढील नहीं दिखाई। 10 फरवरी 1921 को 'काशी विद्यापीठ' की स्थापना की। 5 सितम्बर 1920 से 'आज' नाम से दैनिक समाचार पत्र निकलवाना आरम्भ किया। 24 अक्टूबर 1936 को 'भारत माता मंदिर' की स्थापना की। ये संस्थायें आज भी सफलतापूर्वक चल रही हैं। और शिव प्रसाद गुप्त की विचारधारा और उद्देश्यों की पूर्ति कर रही हैं। उनको हिन्दी भाषा से इतना प्रेम था कि हिन्दी जानने वाले व्यक्ति से यदि पत्र पर पता भी अंग्रेजी में लिखा होता तो वापिस कर देते थे। अपनी कार की नम्बर प्लेट हिन्दी में लिखवाई हुई थी। एक बार इस बात पर उनका चालान हो गया तो मुकद्दमा हाई कोर्ट ले गये। अपने समाचार पत्र में कोई शब्द रोमन लिपि में नहीं लिखने की आज्ञा थी।

शिव प्रसाद गुप्त 1929 में पुन: विदेश यात्रा पर गये और 21-4-1930 को लौटे। उस समय नमक कर आन्दोलन चल रहा था। उसमें भाग लेने पर गिरफ्तार कर लिये गये। बाद में इर्विन-गाँधी एक्ट के आधीन छोड़ दिये गये। विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और मादक पदार्थ की दुकानों के सामने पिकेटिंग का नेतृत्व करते हुए 20 जून 1930 में उन्हें पुन: गिरफ्तार किया गया और धारा 144 तोड़ने के अपराध में 3 महिने की सजा और 3 सौ रू. जुर्माना करके बस्ती जेल में डाल दिया गया। इसी दौरान टाउन हाल पर दिये गये उनके भाषण को देशद्रोह का अभियोग मानकर 1 वर्ष अतिरिक्त कारावास मिला। कांग्रेस कमेटियों और काशी विद्यापीठ को गैरकानूनी घोषित करके पुलिस ने उन्हें अपने कब्जे में ले लिया। 1 जुलाई 1931 को जब वे रिहा हुए तो बहुत कमजोर हो गये थे। लगभग 25 पौण्ड वजन कम हो

गया था। ब्रिटिश सरकार ने धर्म के आधार पर प्रतिनिधित्व का फैसला लिया। जिसका सारे देश में विरोध हुआ। काशी में भी जुलूस निकाला गया जिसका नेतृत्व शिवप्रसाद गुप्त ने किया जिसमें 17 अगस्त 1932 को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और 16 सितम्बर को एक वर्ष की सजा के लिये उन्हें लखनऊ जेल भेजा गया। वहाँ 15 अक्टूबर को प्रात: शौच जाते समय पक्षाघात हो गया जिससे उनका बायाँ अंग बेकार हो गया। 23 अक्टूबर 1932 को उन्हें पक्षाघात के कारण जेल से छोड़ दिया गया।

शिव प्रसाद गुप्त की कार्य शैली अनुपम और प्रेरक थी। वे आमोद प्रमोद के अवसर को भी नहीं चुकते थे। मालवीय जी जब कलकत्ता पहुचे तो घोड़ा गाड़ी से घोड़ा हटवाकर स्वयं गाड़ी खींचने लगे। इससे जनसमूह में गजब का उत्साह उभर आया और लोगों में धन देने की होड़ लग गई थी। वे बच्चों को बहुत प्यार करते थे। उनसे छेड़छाड़ करने का उनका अपना तरीका था। वे बच्चों से अपनी दाढ़ी खिचवा कर खुश होते थे। कभी उनको अपने ढीले-कपड़ों में छुपाकर सबको आश्चर्य चकित कर देते थे। गंगा घाट पर स्नान करते बच्चों से मुँह के द्वारा लड्डू पकड़वाकर खेल रचा देते थे।

शिव प्रसाद गुप्त को पुस्तकों से बड़ा प्रेम था। जब वे विदेश यात्रा से आये तब लाखों रुपये की पुस्तकें खरीदकर लाये। प्रकाशकों को उन्होंने आदेश दे रखे थें कि जब कोई नई पुस्तक प्रकाशित हो एक प्रति उनको तुरन्त भेज दी जाये। क्रान्तिकारी मन्मथनाथ गुप्त ने यह स्वीकार किया है कि शिव प्रसाद गुप्त उनको जेल में पुस्तकें पहुंचाया करते थे और पढ़ने के बाद उनको लौटाने के लिए पैसे भी देते थे।

शिव प्रसाद जी गांधीवादी होते हुए भी, क्रान्तिकारियों की दिल खोलकर सहायता करते थे। उन्होंने अपनी सचिव अन्नपूर्णा को कोड-व्यवस्था बताई हुई थी ''हाँ'' कहने का अर्थ 100/- रुपया, अच्छा कहने का अर्थ 500/- (पाँच सौ) रुपया और कुछ कहने का अर्थ 1000/- (एक हजार) रुपया समझने की प्रक्रिया होती थी। चन्द्रशेखर आजाद गिरफ्तारी से बचने के लिए नित्य स्थान बदलते रहते थे। इसके बावजूद भी उनको नियमित सहायता पहुँचती थी।

शिव प्रसाद गुप्त की महात्मा गाँधी में असीम निष्ठा थी उन्होंने 1921 में काशी विद्यापीठ और 1936 में 'भारत माता मन्दिर' के उद्घाटन के लिए गाँधी जी को ही बुलाया था। ऐसा गांधीवादी राष्ट्रीय पुरूष भारत की स्वाधीनता को देख नहीं पाया। 16 अप्रैल 1944 को उनका देहान्त हो गया।

**





# श्रीप्रकाश

*भारत सरकार ने श्रीप्रकाश जी के सम्मान में सर्वप्रथम 3–8–1991 को 2 रुपये की 6 लाख डाक टिकटें जारी की।*

श्रीप्रकाश जी का जन्म भाद्रकृष्ण 4 सम्वत् 1947, तदानुसार 3 अगस्त 1890 को उत्तर प्रदेश की विद्या और धार्मिक नगरी वाराणसी में हुआ। उनके पिता भारत रत्न विभूषित, प्रख्यात विद्वान्, शिक्षाविद्, दार्शनिक और स्वतंत्रता के प्रथम पंक्ति के सेनापति डॉ. भगवान दास थे जिनके पिता साह माधावदास ने धानाढ्य होते हुए एक अधयापक की पुत्री से बेटे का विवाह रचाया था। श्रीप्रकाश जी की शिक्षा का सर्वोत्तम प्रबन्ध किया गया। प्रारम्भिक शिक्षा पूरी होने के पश्चात् अपने पिताश्री और उनके सहयोगियों द्वारा स्थापित सेन्ट्रल हिन्दू कालेज से हाई स्कूल और बी. ए. की परीक्षाएं उत्तीर्ण की। 1911 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में आगे की शिक्षा प्राप्त करने गये जहाँ से बी.ए.एल.एल.बी. करने के पश्चात् ''इनर टेम्पल'' से बैरिस्टर बनें।

श्रीप्रकाश जी योरोपीय देशों की यात्राएं करने के पश्चात् 1914 ई. में भारत वापिस आये। यहाँ आकर वाराणसी के तत्कालीन विख्यात वकील मुंशी महादेव प्रसाद के साथ वकालत का काम आरम्भ किया। वकालत का कार्य उनके आदर्शों के अनुकूल नहीं था इसलिए बनारस के सेन्ट्रल हिन्दू कालेज में इतिहास के अधयापक बने। कुछ दिनों के पश्चात् इलाहाबाद के अंग्रेजी 'लीडर' के सम्पादक मंडल में तेजस्वी पत्रकार श्री सी. वाई. चिन्तामणि के निर्देशन में काम किया। पं. मोतीलाल नेहरू द्वारा संचालित अंग्रेजी के राष्ट्रीय दैनिक 'इन्डिपेन्डेट' के बाद 'नेशनल हैरल्ड' को आर्थिक संकट की परिस्थिति में सम्भाला। शिवप्रसाद गुप्त असहयोग आन्दोलन के मुख्य नायक थे उन्होंने 'आज' समाचार पत्र स्थापित किया जिसमें अंग्रेज शासन के दमन और अत्याचार के समाचार मुख्य रूप से दिये जाते थे इस समाचार पत्र को विष्णु पराडकर के साथ जन सामान्य में लोकप्रिय बनाने में मुख्य भूमिका निभाई।

कांग्रेस पार्टी ने प्रस्ताव पास करके सरकारी विद्यालयों और संस्थाओं के बहिष्कार का आह्वान किया। विद्यार्थियों की शिक्षा को निरन्तर रखने के लिए कोई अन्य प्रबन्धा करना आवश्यक हो गया था। श्री शिवप्रसाद गुप्त ने 10 द्धदसऋ लाख रुपये मूलधान से अपने छोटे भाई श्री हरप्रसाद की स्मृति में एक शिक्षानिधि स्थापित की। श्रीप्रकाश जी वर्षों तक इसके मन्त्री और कोषाधयक्ष रहे। 1971 ई. में वे इसके सभापति बने। इस शिक्षानिधि ने महात्मा गाँधी की प्रेरणा से 10 नवरी 1921 को काशी-विद्यापीठ की स्थापना की। इसमें श्री प्रकाश जी व्यवस्था सम्बन्धी कार्यों के साथ-साथ प्रतिदिन अंग्रेजी साहित्य, राजशास्त्र और न्यायशास्त्र

का अधयापन करते थे। उनकी कार्य कुशलता और कर्त्तव्य परायणता के आधाार पर विद्यार्थियों ने 'आदर्श नागरिक' की उपाधिा से सम्मानित किया। उनके विद्यार्थियों में श्री लाल बहादुर शास्त्री, त्रिभुवन नारायण सिंह, डॉ. राम सुभग सिंह, डॉ. बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर, कमलापति त्रिपाठी, भोला पासवान कुछ प्रमुख नाम हैं। 1969 में श्रीप्रकाश जी को इस विद्यापीठ का कुलाधिापति बनाया गया।

श्रीप्रकाश जी शिक्षा, राजनीति आदि के कार्यों के साथ समाज सेवा भी करते रहे। काशी में अग्रवाल समाज, स्पोर्टस क्लब की स्थापना की। काशी सेवा समिति की स्थापना की और उसके प्रथम प्रधाानमंत्री निर्वाचित हुए। बिहार में भयंकर भूकम्प आया तब उन्होंने वहाँ लगभग ढाई द्ध2-1/2ऋ महीने रहकर पीड़ितों की सेवा की। काकोरी षड्यंत्र और धाानापुर हत्याकांडों के मुकदमों में स्वाधीनता सैनिकों को बचाने में उनके वकील बनकर नि:शुल्क कार्य किया। 1946 में उनके प्रयत्न से ब्रिटिश सरकार ने जयप्रकाश नारायण और डॉ. राम मनोहर लोहिया को मुक्त करना पड़ा।

राजनीतिक क्षेत्र में श्रीप्रकाश जी को अन्य नेताओं की भाँति अंग्रेजी प्रशासन की सजायें और पीड़ाएं सहन करनी पड़ी। नमक सत्याग्रह का संचालन करने पर उनको 6 द्धछ:ऋ महीने का कारावास और जुर्माना हुआ। 1934 और 1946 में सेन्ट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्य निर्वाचित हुए। श्रीप्रकाश जी का भाषण जन सामान्य बड़ी रुचि से सुनते थे। वह हास्य व चुटकियों से पूर्ण होता था। उससे सरकारी तन्त्र तिलमिला उठता था। सन् 1941 में तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत को द्वितीय महायु) में शामिल किये जाने के विरोधा में असहयोग करने पर कारावास का दण्ड मिला। 1942 में 'भारत छोड़ो' के आन्दोलन में उनको नजरबन्द करके रखा गया।

श्रीप्रकाश जी की कार्य करने की शैली बिल्कुल भिन्न थी। वे जनसामान्य के नजदीक रहना पसन्द करते थे। इसलिए वे वर्ष में लगभग 6 द्धछ:ऋ महीने दौरों में व्यतीत करते थे। वे सभी के लोकप्रिय थे। वे सुसम्पन्न व्यक्ति की भांति ही छोटे से छोटे कार्यकर्त्ताओं से स्नेह और आत्मीयता से मिलते थे। उनमें कोई भिन्नता नहीं रखते थे। इसी कारण से किसी प्रान्त में कलह या गुत्थियां होती तो उन्हें दूर करने और सुलझाने के लिए उनको भेजा जाता था। 1947 में देश को स्वाधीनता मिलने के बाद, श्रीप्रकाश को पाकिस्तान में पहला हाई कमिश्नर बनाकर भेजा गया। साम्प्रदायिक झगड़ों की कोई चिन्ता न करते हुए संकटग्रस्त स्थानों का दौरा करते थे। शरणार्थियों के योगक्षेम तथा अफत में फँसे हुओं को बचाने में वे प्राय: 16 घण्टे परिश्रम करते रहते थे। इसी प्रकार की परिस्थिति आसाम में होने पर श्रीप्रकाश को वहाँ का राज्यपाल बनाया गया। वहाँ उन्होंने नागरिक प्रशासन के साथ सेवा का भी संचालन करना पड़ा था। जब वहाँ शान्ति स्थापित हो गई तो श्री प्रकाश जी को केन्द्र में वाणिज्य मन्त्री का पद-भार सम्भालने के लिए दिल्ली बुला लिया गया। सन् 1952 में साधाारण निर्वाचन के पश्चात् वे पुन: वाणिज्य मन्त्री बनाये गये। परन्तु





उसी समय मद्रास प्रान्त में प्रशासकीय संकट पैदा हुआ। वहाँ दुर्भिक्ष की स्थिति भी पैदा हो गई थी। श्री प्रकाश जी को वहाँ राज्यपाल का पद-भार सम्भालना पड़ा। उन्होंने अपनी योग्यता का परिचय देते हुए सामान्य स्थिति बना दी। तत्पश्चात् बम्बई प्रान्त का राज्यपाल बनें। उन दिनों महाराष्ट्र, गुजरात और विदर्भ का प्रश्न बड़ा ही जटिल था। उनकी योग्यता और दूरदर्शिता के कारण महाराष्ट्र और गुजरात दो राज्यों का गठन बड़ी सहजता से सम्पन्न हो सका। उनको नव-गठित महाराष्ट्र प्रान्त के प्रथम राज्यपाल बनने का गौरव प्राप्त हुआ।

श्रीप्रकाश ने उपरोक्त सरकारी पदों के साथ अन्य उत्तरदायित्वों को भी निभाया। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, रेडियो समाचार, विद्यार्थियों में नैतिक शिक्षा आदि में सुधाार के लिए बहुमूल्य सुझाव दिये। श्रीप्रकाश जी समय को बहुत महत्त्व देते थे। दौरों पर, सम्मेलनों में, बैठकों में घड़ी की सुई की भाँति ठीक समय पर पहुँचना उनकी विशेषता रही।

श्रीप्रकाश जी ने इतने उत्तरदायित्वों के बावजूद लेखन के कार्यों के लिए भी समय निकाला। द्ध1ऋ गृहस्थ गीता द्ध2ऋ भारत के समाज और इतिहास पर रुट विचार द्ध3ऋ नागरिक शास्त्र द्ध4ऋ पाकिस्तान के आरम्भिक दिन द्ध5ऋ भारत रत्न डॉ. भगवानदास का जीवन चरित्र द्धहिन्दी और अंग्रेजी भाषा मेंऋ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी।

श्रीप्रकाश जी ने महाराष्ट्र के राज्यपाल पद से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् अन्य कोई पद स्वीकार नहीं किया। वे देहरादून से दस मील दूर राजपुर में विश्राम कुटी बनाकर रहने लगे। 2 अक्टूबर 1969 को महात्मा गांधाी की जन्म शताब्दी के अवसर पर मसूरी में उनकी मूर्ति का अनावरण करने के लिए जा रहे थे तब पेशाब रुकने की बीमारी हो गई। इस बीमारी का उपचार नहीं होने के कारण उनका 23 जून 1971 को देहान्त हो गया।

**

# जयशंकर प्रसाद

*भारत सरकार ने जयशंकर प्रसाद के सम्मान में सर्वप्रथम 16–9–1991 को 2 रूपये की 6 लाख डाक टिकटें जारी की।*

जयशंकर प्रसाद का जन्म माघ शुक्लादशमी सम्वत् 1946 तदानुसार सन् 1889 को उत्तर प्रदेश राज्य के वाराणसी नगर में हुआ। उनके पिताजी का नाम देवी प्रसाद साहू था। उनका सुरती का व्यवसाय था जो 'सुंघनी साहू' के नाम से देश के कोने-कोने में बिकती थी। इस व्यापार से वाराणसी के गोवर्धन सराय में जमीन खरीदकर भवन निर्माण करवाया और साथ ही सदाशिव का मंदिर बनवाया। प्रचुर आय के साथ उच्च श्रेणी के जीवन निर्वाह का परिवार में चलन आरम्भ हो गया था। घोड़ा बग्गी की सवारी, सेवक रखना शान की बात थी इसी धनाढ्य प्रवृत्ति के कारण पहलवानी अखाड़ा कई पीढ़ियों तक चला। जयशंकर प्रसाद स्वयं पहलवानी करते थे। अपनी जवानी में नियमित रूप से प्रतिदिन एक हजार बैठक और पाँच सौ दण्ड निकालते थे। 4-5 पहलवानों से जोर करते थे। नित्य गाय का एक सेर दूध पीकर व्यायाम करते और बाद में जमकर बादाम, घी आदि का सेवन करते थे। उनका कद 5 फुट 2 इंच और वजन तीन मन के लगभग था। स्वयं शौकिया कुश्ती करते थे और दूर-दूर तक दंगल देखने जाया करते थे। प्रसाद को जानने वाले उनको 'नटवा बैल' या 'नाटी बछिया सदा कबोय' कहकर चिड़ाते थे।

जयशंकर प्रसाद जी की शिक्षा क्वींस कालेज में छटी कक्षा तक हुई। उनके पिताजी की मृत्यु जब वे मात्र 15 वर्ष के और माताजी की मृत्यु जब उनकी आयु 17 वर्ष की थी हो गई। इससे उनकी शिक्षा नियमित रूप से आगे नहीं बढ़ पाई। उनको हिन्दी और संस्कृत पढ़ाने के लिए अध्यापक घर पर ही आते थे। विद्यार्थी काल में ही प्रसाद जी 'कलाधर' उपनाम से लिखने लगे थे। शुरू में ब्रजभाषा में कविताएं लिखते थे। प्रसादजी पर निजी व्यापार को आगे बढ़ाने का दबाव बढ़ता गया। वे दुकान पर आकर बैठ तो जाते परन्तु उनकी काव्य वृत्ति व्यापार में पूरा ध्यान नहीं लगने दे रही थी। वहाँ पर वे खाते के रद्दी कागजों पर कविताऐं लिख लिया करते। जयशंकर प्रसाद विनोदप्रिय थे उन्होंने परिचितों, मित्रों और परिवारजनों के नामकरण किये हुए थे। एक बार अध्यापक महोदय भूगोल का अध्याय पढ़ा रहे थे उन्होंने एक प्रश्न कापी में उतारने का आदेश दिया। प्रसादजी ने अपने सहपाठी





लक्ष्मीनारायणसिंह के साथ उसे दोहा-चौपाई रूप में पद्य शैली में लिख डाला। अध्यापक महोदय ने जब जाँच की तो ऊपरी दिखावटी क्रोध जताते हुए बोले, ''यहाँ तुम दोनों पढ़ने आये हो या शायरी करने?'' यह संस्मरण सिद्ध करता है कि प्रसाद जी किस सीमा तक कविता और काव्य शैली में रूचि रखते थे। व्यवसाय में दिन प्रतिदिन उतार चढ़ाव आते रहते हैं। प्रसादजी के बड़े भाई बाबू शम्भू रत्नजी उन पर प्रतिबन्ध इसलिए लगाते थे कि परिवार पर ऋण का बोझ कम हो जाये। उनकी मृत्यु के पश्चात व्यापार का सारा उत्तरदायित्व उनके कंधों पर आ पड़ा। तब प्रसादजी ने अपनी दिनचर्या को बदल देना पड़ा। वे कस्तूरी या अन्य वस्तुओं गुलाब जल और इत्र की परख करने में कुशल थे। वे व्यवसाय में पूर्ण ज्ञाता भी थे। सुर्ती, इत्र और हर प्रकार के 'टायलेट' का सामान बहुत सुन्दर बना लेते थे।

जयशंकर प्रसाद जी व्यापार का उत्तरदायित्व अनचाहे मन से निभाते रहे। उनकी दिनचर्या साहित्यिक रहती। प्रात:काल से रात्रि तक वे या तो पढ़ने-लिखने अथवा लेखक और कवियों से चर्चा में व्यतीत करते थे। सांयकाल स्नानादि से निवृत होकर नारियल बाजार वाली दुकान की गद्दी पर नहीं बैठते, बल्कि दुकान के सामने चौक थाने के ठीक पीछे एक कमरा ले रखा था उसमें दरी, चाँदनी बिछ जाती, उसके आगे तकिया लगा होता, फिर वहीं साहित्यिक दरबार लगा होता। उस दरबार में हिन्दी के बड़े-बड़े साहित्यकार, कवि और लेखक मिलते जिनमें-मैथिलीशरण गुप्त, राय कृष्णदास, निराला, उग्र आदि प्रमुख थे। यह लगभग दो घंटे प्राय: रात के दस बजे तक होता। तत्पश्चात् रात में पान जमाकर प्रसाद जी अपनी लेखनी चलाते थे। इस प्रकार प्रसाद जी को आराम और निद्रा की पूर्ति नहीं हो पाती थी। पाचनशक्ति क्षीण हो जाने के कारण डायरिया की शिकायत रहने लगी थी। शारीरिक कष्टों के बावजूद प्रसादजी निरन्तर साहित्य रचना करते रहे। 1910 ई. में उन्होंने साहित्य लेखन आरम्भ किया। उन दिनों सरस्वती पत्रिका एक प्रमुख साहित्यिक पत्रिका थी। प्रसाद जी का आचार्य द्विवेदी जी से कुछ मतभेद था प्रसाद जी ने अपने भानजे श्री अम्बिका प्रसाद गुप्त से 'इन्दू' मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ करवाया। इस पत्रिका के लिए वे बराबर लिखते रहे और उसमें छपता रहा। इस पत्र में जो आर्थिक नुकसान होता, प्रसादजी उसकी भरपाई करते थे। प्रसादजी ने 'चन्द्रगुप्त', ''स्कन्दगुप्त'', अम्रपाली और ध्रुवस्वामिनी ऐतिहासिक नाटक लिखे। इन पुस्तकों की आलोचना होना स्वाभाविक था। किसी ने उनको गडे-मुर्दों को उखाडने का प्रयास कहा। कानपुर के 'प्रताप' समाचार पत्र में कृष्णानन्द गुप्ता का एक लेख छपा था जिसमें कहा गया था कि ये नाटक 'ऐसी ब्रजभाषा में लिखे गये

हैं कि उसे समझना भी टेढी खीर है और खेले तो जा नहीं सकते।'' वाराणसी के कुछ युवक साहित्यकारों ने इस चुनौती को स्वीकार किया और प्रसाद जी के निर्देशन में उनका मंचन किया। उनमें लक्ष्मीकान्त झा जो बाद में जम्मू-कश्मीर और रिजर्व बैंक के गवर्नर रहे और गणेश दत्त झा, जो बाद में राजस्थान के जज रहे आदि विख्यात व्यक्तियों ने भाग लिया था। 'नारी और लज्जा' और 'आँसू' छायावाद की हृदय स्पर्शी कविताऐं हैं प्रसाद जी के समय में अधिकतर कहानियाँ और लेख अन्य भाषा में अनुवाद होने के बाद प्रकाशित होती थी। जब प्रसाद जी की 'आकाशदीप' और 'गुण्डा' कहानियाँ मौलिक रचना के रूप में छपी तो सभी लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया था।

28 जनवरी 1937 से जयशंकर प्रसाद को ज्वर आने लगा था जब उनके बलगम की जाँच की गई तो मालूम हुआ कि उनको राजयक्ष्मा हो गया है इस रोग के बारे में प्रसाद जी भली प्रकार से जानते थे क्योंकि उनकी पूर्व पत्नियों का देहान्त इसी बीमारी से हुआ था। इस अवधि में प्रसाद जी 'कामायनी' की रचना कर रहे थे। डॉ. एच. सिंह उनका उपचार करते थे। कामायनी के पूरा होने के बाद उन्होंने 'इरावती' उपन्यास की रचना आरम्भ की थी जो पूरी नहीं कर सकें। यहाँ तक की यात्रा में प्रसाद जी की वित्तिय स्थिति व्यवसाय और सम्पत्ति पर कोर्ट आर्डर के कारण इतनी दयनीय हो गयी थी कि जो चांदी के बर्तनों में खाना खाता था उसे हंडिया में सब्जी पकानी पड़ी थी। राजयक्ष्मा रोग से जयशंकर प्रसाद का देहावसान 46 वर्ष की अल्पायु में 14 अक्टूबर 1937 को हुआ। हिन्दी साहित्य को एक भारी क्षति हुई।

**





# हनुमानप्रसाद पौद्दार

*भारत सरकार ने हनुमानप्रसाद पौद्दार के सम्मान में सर्वप्रथम 10–9–1992 को 1 रूपये की 6 लाख डाक टिकटें जारी की।*

हनुमानप्रसाद पोद्दार का जन्म 17 दिसम्बर 1892 ई. में रतनगढ़ में हुआ। यह नगर राजस्थान प्रान्त में है। इनके पिताजी का नाम भीमराज और माता जी का नाम रीखि बाई था। पोद्दार जी जब केवल 5 वर्ष के थे माता जी का देहान्त हो गया और इनके लालन पालन का उत्तर दायित्व इनकी दादी रामकौर ने सम्भाला। आरम्भिक शिक्षा कलकत्ते में प्राप्त की।

हनुमानप्रसाद के दो विवाह हुए थे। दादी रामकौर ने रतनगढ़ में ही एक परिवार की बालिका महादेवी से निश्चत कर दिया था। दुर्भाग्य से महादेवी को चेचक की बीमारी ने आ घेरा। इससे चेहरे पर दाग के निशान हो गए और वह पैर से विकलांग हो गयी। फिर भी हनुमानप्रसाद ने उस बालिका से विवाह करने में आनाकानी नहीं की। हनुमानप्रसाद का दुर्भाग्य यहीं तक सीमित नहीं रहा। महादेवी ने सम्वत् 1961 में विवाह के बाद सम्वत् 1966 में एक पुत्र को जन्म दिया। महादेवी दो सप्ताह बाद और पुत्र दो महीने के बाद चल बसे। हनुमानप्रसाद इससे दु:खी और विचलित रहने लगे थे। पिता भीमराज इससे दु:खी हुए और वंश को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से उनका दूसरा विवाह राजगढ़ के सेठ मंगलराम की पुत्री मुवटीबाई से रचाया।

हनुमानप्रसाद को शिक्षा, सदाचार, ईमानदारी, कर्तव्यपरायणता, मितव्ययता आदि सद्गुण विरासत में मिले थे। उनके पिता भीमराज का स्वर्गवास सम्वत् 1969 को हो गया। अब व्यापार की सभी जिम्मेदारियां उनके कंधों पर आ गई। जिनको उन्होंने बड़ी निपुणता और परिश्रम से निभाया। व्यापार के साथ हुनमान प्रसाद सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों से अछूते नहीं रह सके। उन्होंने कलकत्ते में विद्यमान-हिन्दू क्लब, वैश्य समाज, बड़ा बाजार पुस्तकालय तथा सावित्री कन्या विद्यालय, हिन्दी साहित्य परिषद्, साहित्य संवर्द्धिनी समिति आदि के संचालन में तन मन धन से सहयोग दिया। 19 जुलाई 1905 को बंगाल के विभाजन की घोषणा की गई। इससे सारा बंगाल क्रोधाग्नि से जल उठा। इस प्रान्त के हर भाग से लोग कुर्बानियां देने के लिए आगे आये। हनुमानप्रसाद ने उसमें भी सक्रिय भाग लिया।

हनुमानप्रसाद को जब पता चला कि वस्त्रों में चिकनाई लाने के लिए चर्बी का

प्रयोग किया जाता है तब उन्होंने विदेशी वस्त्रों को पहनने का बहिष्कार किया और मोटी खादी और हाथ से बनाए गए वस्त्रों को अपनाया। इसी दौरान उन्होंने मारवड़ी युवकों के साथ मिलकर 'मारवाड़ी सहायक समिति' का गठन किया जिसका बाद में नाम बदलकर 'मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी' कर दिया गया।

सार्वजनिक जीवन में व्यक्ति को हर प्रकार के लोगों से सम्पर्क रखना पड़ता है इनकी छवि अध्यात्मिक विभूति के रूप में थी। सन् 1916 में 26 अगस्त को मैं. आर.बी. रोड़ा एण्ड कम्पनी के कर्मचारी श्रीशचंद्र ने जर्मनी से आये एक पार्सल की दस पेटियां जिसमें 50 पिस्तौलें, 46 हजार कारतूस बन्दरगाह के कार्यालय से छुड़वाकर बैलगाड़ी में लदवाए। श्रीशचन्द्र स्वयं क्रान्तिकारी समिति का सदस्य था। उसके सहयोग से वे पेटियाँ रास्ते में क्रांतिकारियों ने गायब कर ली। प्रभुदयाल हिम्मत सिंह ने कुछ कारतूस हनुमानप्रसाद पोद्दार की बिड़ला एण्ड कम्पनी की गद्दी पर चुपचाप पहुंचा दिये। कलकत्ता की पुलिस श्रीशचन्द्र को मुखाबिर बनाने में सफल हो गई। उसकी सूचना के आधार पर 26 जुलाई 1914 को छापा मारकर कारतूस बरामद करके, हनुमानप्रसाद के साथ अन्यों को गिरफ्तार किया। भारत रक्षा कानून के आधीन उनको जेल की सजा सुनाकर अलीपुर जेल से शिमलापाल (बाकुंडा), जेल में भेज दिया गया। यहां उन्होंने पौने दो वर्ष व्यतीत किये। बाकुंडा में हनुमानप्रसाद के मौसेरे भाई जयदयाल गोयन्दका व्यापार करते थे और उनको खाने-पीने का सामान भेजते थे। गोयन्दका धार्मिक प्रवृति के व्यक्ति थे और प्रतिदिन गीता का पाठ करते थे। इस निरन्तर मुलाकात से उनको हनुमानप्रसाद की प्रवृत्ति की जानकारी मिलती रही। वे गीता के 68 और 69 श्लोक के अनुसार इसका प्रचार-प्रसार करना चाहते थे। हनुमानप्रसाद ने पूर्व में एक बार बाबू राव विष्णुराव पराडकर के सहयोग से भगवत गीता की प्रतियां बटवाईं। इन दोनों में समान रूचि होने के कारण संबंध प्रगाढ़ हो गया। आरम्भ में गोयन्दका ने गीता की पांच हजार प्रतियां छपवाई। मुद्रण में त्रुटियों के कारण उन्होंने अपना प्रिटिंग प्रेस लगाने की आवश्यकता समझी। श्रीमन् घनश्यामदास जी जालान गोरखपुर में रहते थे। उनके सुझाव पर वहां उर्दू बाजार में एक प्रिटिंग प्रेस की स्थापना की। इसके लिए 'गोविन्द भवन कार्यालय' नाम से ट्रस्ट पंजीकृत कराया और 1923 से गीता का प्रकाशन आरम्भ हो गया। 1926 में कल्याण पत्रिका का मुद्रण व प्रकाशन हनुमानप्रसाद पोद्दार की देख रेख में होने लगा। इस पत्रिका के माध्यम से पोद्दार जी का दिव्य रूप सामने आया। हनुमानप्रसाद पोद्दार के सौम्य और मित्रवत् व्यवहार के कारण सब इनको 'भाई जी' कहकर पुकारने लगे। भाई जी ने 'कल्याण' पत्रिका





के लगभग 44 विशेषांक निकाले जिनमें पद्मपुरणांक, मार्कण्डेय, ब्रह्म पुराण, स्कन्दपुराण, नारद-विष्णु-पुराण, देवी-भागवत्, योग-वशिष्ठ-शिव पुराण, ब्रह्म-वेर्क्त पुराण, अग्नि-गर्ग-संहिता, नरसिंह-पुराण आदि ग्रन्थों को सरल भाषा में प्रकाशित करके जन साधारण को इन धर्मग्रन्थों के अध्ययन का अवसर दिया। इससे 'कल्याण' पत्रिका की लोकप्रियता इतनी बढ़ गई कि उन दिनों इसकी सदस्यता दो लाख तक पहुंच गई थी। उन्होंने अपने जीवनकाल में लगभग पौने-छः सौ विभिन्न आकार-प्रकार की पुस्तके मुद्रित की। हिन्दू-धर्म की संस्कृत की पुस्तकों को संस्कृत श्लोकों के साथ हिन्दी भाषा में अनुवाद के साथ प्रकाशित करवाया। इसमें क्लिष्ट धार्मिक पुस्तकें जनसाधारण को समझ आने लगने से उनको घर-घर पहुंचने में देर नहीं लगी। श्रीमद्भागवत् गीता व श्रीराम चरितमानस के विभिन्न आकारों के संस्करण करोड़ों की संख्या में पहुंच गए। भाई जी ने तुलसीदास व सूरदास के साहित्य लोकप्रिय बनाए। इन ग्रन्थों को साधारण आय वाला खरीद सके, इसलिए मूल्य बहुत सस्ता रखना आवश्यक था। इसके लिए धन का प्रबन्ध अन्य स्रोतों से किया। आयुर्वेद दवाईयां, चर्मरहित जूतों, लाखरहित चूड़ियों और कपड़ों की दुकाने खोली गई। पुस्तकों के लिए सस्ता कागज प्राप्त करने के लिए टीटागढ़ पेपर मिल से कागज सीधा मंगवाने का प्रबंध किया। इस प्रकार कालांतर में गीता प्रेस पैसों के मामले में किसी के दान आदि पर निर्भर नहीं रहा।

अपने धार्मिक पुनीत कार्यों से, हनुमानप्रसाद पोद्दार सभी के आदरणीय पात्र रहे। महात्मा गाँधी और मदन मोहन मालवीय से मुलाकातें होती रहती थी। मालवीय जी ने तो प्रसन्न होकर किसी शुभ कार्य करने से पूर्व 'नारायण नारायण' शब्द का पांच बार उच्चारण करने का गुरू मंत्र प्रदान किया था। इस महान् आत्मा पर मृत्यु ने कोई करूणा प्रदर्शित नहीं की। इनका देहावसान 22 मार्च 1971 को पेट की बीमारी के कारण पावन गंगा के किनारे पवित्र पावन स्थान ऋषिकेश में हुआ। अनेक डॉक्टरों और वैद्यों के उपचार कुछ नहीं कर पाये। ऐसी पवित्र आत्मा संसार में विरला ही पैदा होती है।

**

# श्यामलाल गुप्त 'पार्षद'

*भारत सरकार ने श्यामलाल गुप्त पार्षद के सम्मान में सर्वप्रथम 4–3–1997 को 1 रूपये की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।*

श्यामलाल गुप्त पार्षद का जन्म सम्वत् 1953, भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी (तदानुसार सन् 1896) को कानपुर जिले के नर्वल गाँव में हुआ। उनके पिताजी का नाम विश्वेश्वर प्रसाद और माताजी का नाम कौशल्या देवी था। उन्होंने नर्वल गाँव से मिडिल की परीक्षा उतीर्ण करने के पश्चात् हिन्दी साहित्य सम्मेलन की 'विशारद' की उपाधि प्राप्त की। उनको कविता आदि लिखने की योग्यता नैसर्गिक रूप में प्राप्त हुई थी। इससे उन्होंने जीवन के आरम्भिक समय में लिखना शुरू कर दिया था। प्रारब्ध ने अपना खेल दिखाया। उनके पिताजी श्री विश्वेश्वर प्रसाद को किसी ने भविष्यवाणी के रूप में बताया कि यदि उनका पुत्र कविता आदि लेखन करता रहेगा तो उसके नेत्र या कान नष्ट हो जायेंगे। उनके पिताजी ने श्यामलाल गुप्त को मोहवश कविता आदि लिखने से रोका। गुप्त जी ने हर गीतिका, सवैया, धनाक्षरी आदि छन्दों में रामकथा के बाल काण्ड की रचना की थी, जिसको उनके पिताजी ने कुए में फेंक दिया था। इस प्रकार हिन्दी साहित्य जगत को भारी क्षति हुई। पार्षद जी गणेश शंकर 'विद्यार्थी' द्वारा सम्पादित' प्रताप' के नियमित पाठक थे। यह सम्पादक उस समय की ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों और अन्यायों को निडरता से लिखते थे। 'पार्षद' जी अपनी रचना इस पत्र को भेजते और गणेश शंकर विद्यार्थी जी प्रताप समाचार पत्र में प्रमुखता से छापते थे। पार्षद जी 1914 में कानपुर शहर में म्युनिसिपल बोर्ड के प्राइमरी स्कूल में नियुक्त हुए। प्रशिक्षण से पूर्व बोन्ड देने से उन्होंने इंकार कर दिया जिससे त्याग पत्र देना पड़ा। पार्षद जी शिक्षा को बहुत महत्व देते थे उन्होंने 'दोसर वैश्य इंटर कालेज' की स्थापना की ओर संचालन भी किया। 1919 में गाँधी जी के आह्वान पर सक्रिय राजनीति में आये और फतेहपुर को कार्य क्षेत्र चुना। पार्षद जी 43 बार जेल गये। सर्वप्रथम 1921 में असहयोग आन्दोलन का नेतृत्व करते हुए गिरफ्तार कर लिए गये। 1930 और 1944 वर्ष जेल यात्रा की और 1932 तथा 1942 में फरार होकर अज्ञातवास रहे। एक असामाजिक व्यक्ति के विरूद्ध रचना लिखने के कारण 400/- रू. जुर्माना और जेल जाना पड़ा।

श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' ने 'झंडा उंचा रहे हमारा' गाने की रचना 1924 ई. में





की थी जिसके पीछे एक घटना मुख्य रूप से प्रेरणा का स्रोत थी। 1923 में कांग्रेस पार्टी का फतेहपुर जिला अधिवेशन फतेहपुर में दो दिन के लिए निश्चित था इसकी अध्यक्षता मोती लाल नेहरू ने करनी थी। पहले दिन की अध्यक्षता के दिन उनको तार द्वारा बम्बई में कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेने के लिए बुला लिया गया। फतेहपुर जिला अधिवेशन के दूसरे दिन के अध्यक्ष के लिये विद्यार्थी जी को निवेदन किया गया। गणेश शंकर 'विद्यार्थी' ने उस अधिवेशन में जो भाषण दिया उसे ब्रिटिश राज ने विद्रोहात्मक मानकर मुकदमा चलाया और उनको एक वर्ष के कारावास की सजा मिली।

श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' श्री गणेश शंकर विद्यार्थी को मिली इस सजा के लिए स्वयं को दोषी मानते थे। विद्यार्थी जी जेल से मुक्ति के पश्चात् जब 'पार्षद' जी से मिले तो कहा, ''हमारे पास झंडा गीत नहीं है, तुम क्यों नहीं लिख देते।'' लेखक और कवि आदि की अपनी मजबूरी होती है पुनः जब 'पार्षद' जी विद्यार्थी से मिले तो उनको व्यंग्य सुनना पड़ा और यह वायदा करना पड़ा कि झंडा गीत अगले दिन मिल जायेगा। 'पार्षद जी' पहले से ही विद्यार्थी जी की जेल यात्रा के कारण स्वयं को दोषी मान रहे थे जब ये कटु शब्द सुनने पड़े तो रात को नींद नहीं आई। रात के आखिरी पहर में उन्होंने कागज और कलम लिया और एक ही साथ दो गीत लिख दिये। पहला गीत 'झंडा ऊँचा रहे हमारा' और दूसरा 'राष्ट्र गगन की दिव्य ज्योति, राष्ट्र पताका नमो नमो।'' गणेश शंकर विद्यार्थी अपनी धुन के पक्के थे। उन्होंने पार्षद जी के वायदे के अनुसार अगले दिन डॉ.जी.जी. जोग, गंगा सहाय चौबे और हमीद अली को उनके घर झंडा गान लाने के लिए भेजा। 'पार्षद जी' झंडा गान' के कारण अगले दिन सो सके थे। उन तीनों ने उनको उठाना पड़ा तब उनको प्राप्त हुआ।

गणेश-शंकर विद्यार्थी जी झंडा गान पाकर बहुत खुश हुए। उन्होंने सर्वप्रथम उसे राजर्षि पुरूषोत्तमदास टण्डन को दिखाया। उन्होंने 'झंडा ऊँचा रहे हमारा' गीत से दो पद हटाकर स्वीकृत किया। तत्पश्चात् 'विद्यार्थी' जी ने इस गीत को 'प्रताप' समाचार पत्र के प्रथम पृष्ट पर प्रकाशित करवाया। 1925 के कांग्रेस सम्मेलन में इस गीत को पहली बार गाया गया। इसके पश्चात् तो यह गीत देश के हर देशभक्त की जुबान पर था। जहाँ पर यह गाया जाता वहाँ प्रत्येक जवान मस्ती से चूर हो जाता। झंडे को ऊँचा बनाये रखने के लिए देशवासी शहीद होने में गर्व का अनुभव करने लगे थे। यह गीत राष्ट्र स्वाधीनता संग्राम के लिए असीम प्रेरणादायक सिद्ध हुआ।

श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' ने एक अज्ञात और साधारण जीवन व्यतीत किया और 10 अगस्त 1977 को स्वर्गवास हुआ। **

# सन्त कवि सुन्दरदास

*भारत सरकार ने सन्त कवि सुन्दरदास के सम्मान में सर्वप्रथम 8 नवम्बर 1997 को 2 रुपये की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।*

सन्त सुन्दरदास का जन्म चैत्र शुक्ला नवमी (रामनवमी) को दोपहर के समय सम्वत् 1653 तदानुसार इस्वी सन् 1596 में राजस्थान प्रान्त के जयपुर जिले के दौसा नगर में हुआ था उनके पिता जी का नाम चौखा अपर नाम परमानन्द और माता जी का नाम सति था। यह परिवार खंडेलवाल वैश्व के द्वसर गौत्र से था और उनकी माता जी सोखिया गोत्र की थी। वैश्यों का खंडेलवाल वर्ग 'खंडेल' स्थान से निकासी के कारण जाना जाता है इसमें 72 गोत्र हैं जिनको ऋषि, प्रवर और पूज्य देवियों से जोड़ा गया है। उनमें अटोरिया, काठ, खारवाल, डांस, चामानी, धीया, बम्ब, रावल, माली, सेठी (सोन) हल्दिया आदि कुछ उदाहरण हैं।

एक किंमवदन्ती के अनुसार सन्त दादू के शिष्य जग्गा ने अपने गुरु की आज्ञानुसार, सती के गर्भ से जन्म लिया था और सन्त सुन्दरदास कहलाए। उन्होंने दादू के शिष्य जगजीवन से दीक्षा और आध्यात्मिक उपदेश प्राप्त किया। व 6-7 वर्ष की आयु में ही जन्म स्थान दौसा के पास टहलड़ी में रहने लगे और दादू-वाणी की सीख लेनी आरम्भ की। कहते हैं कि उनमें पूर्व जन्म की भांति मेधावी वृत्ति थी और ब्रह्मचर्य, विद्वता और योग के सभी गुण थे। आध्यात्मिक रचना करने की योग्यता बचपन में ही दीखने लगी। सम्वत् 1664 अर्थात् 11 वर्ष की आयु में देश की विद्यानागरी काशी में ज्ञानार्जन के लिये गये। वहाँ उन्होंने संस्कृत, हिन्दीयोग, व्याकरण, कोष, षटशास्त्र, पुराण और वेदों का गहन अध्ययन किया। योगाभ्यास व चिन्तन में निपुणता प्राप्त की। जहाँ उनमें काव्य में नैसर्गिक प्रतिभा थी वहीं छन्द, अलंकार, रस और सभी प्रकार की विधाओं का ज्ञान प्राप्त करके उसमें निखार प्राप्त किया। काशी में महात्माओं के सत्संग, सन्त तुलसीदास के दर्शन से लाभ उठाया। सन्त सुन्दरदास की स्मरण शक्ति और स्फूर्ति विलक्षण थी। वे अरिघाट के पास रहते थे जहाँ अब दादू-मठ विद्यमान हैं।

सन्त और जल को प्रवाहित रहने में ही लोक कल्याण होता है। सन्त सुन्दरदास ने काशी से अपनी शिक्षा पूरी करने के पश्चात् अनेक यात्राएं की। कार्तिक सुदि 14 सम्वत् 1682 के बाद, सन्त सुन्दरदास शेखावटी के फतेहपुर नगर में रहने लगे। यहाँ पर गुरुभाई डीडवाना के महात्मा प्रागदेश का साथ मिला। वैश्य महाजन धर्म और सन्त वाणी का आदर करते हैं वहाँ के केजड़ीवाल गौत्र के वैश्य परिवार ने उनके रहने के लिए पक्का मकान बनवाया जिसके नीचे तहखाना था और पानी की समस्या के निवारण के लिए उसके आगे कुए का भी निर्माण करवाया।





आध्यात्मिक विभूति के साथ कुछ अलौकिक और विलक्षण शक्ति होने की बातें जुड़ जाती हैं। जयपुर पर मुस्लिम नवाब का शासन था। इन्हीं कारणों से नवाब अल्फखाँ, उसका पुत्र दौलत खाँ और पौत्र तहरखाँ सन्त सुन्दरदास के परम भक्त बन गये थे। रेगिस्तान में उनकी फौज को छोटे से कमण्डल से छाछ पिलाना, घोड़ों को अस्तबल से निकलवाकर भवन के मल्बे से बचवाना, नवाब के आग्रह पर अपने आसन के एक कोने को उठवाकर सारे जयपुर का दृश्य दिखाना आदि अनेक कथाएं सन्त सुन्दरदास के बारे में कही और सुनी जाती है। रोगी को स्पर्श से स्वस्थ कर देने की बात भी कही जाती है। कहा जाता है कि एक बार चोर उनका पलंग, जाजमा और अन्य सामान चुरा कर ले गये। वे चोर रास्ते में ही अन्धे हो गये। पकड़े जाने पर जब उन्होंने सारा सामान छोड़ा और आगे चोरी नहीं करने का वचन दिया तब उनको पुनः दिखाई देने लगा।

सम्वत् 1710 (अर्थात् 1653 ईस्वी) में सन्त सुन्दरदास पुनः काशी गये। वहाँ रहकर उन्होंने एक महान् रचना "ज्ञान समुन्द्र" पूरा किया। इसमें योग-साधना पर विस्तृत वर्णन हैं। यह उनके द्वारा रचित 48 रचनाओं में सर्वोत्तम और विस्तृत ग्रन्थ है। यह वेदान्त शास्त्र की सर्वोच्चता स्थापित करने में सफल प्रयास है। इसमें गुरुभक्ति, योग, ब्रह्मज्ञान आदि विषयों पर गूढ़ता से लिखा है। कई नीरस विषयों को 34 प्रकार के छन्दों का प्रयोग करके स्पष्ट किया है। दूसरा, ग्रन्थ 'सुन्दर विलास' भी उनकी विद्वता और पांडित्यता का बोध कराता है। सन्त सुन्दरदास संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे परन्तु अपनी रचनाओं में इस भाषा का प्रयोग न करके, हिन्दी भाषा में लिखा जिसमें ब्रज, गुजराती, पंजाबी, उर्दू, फारसी, मैथिली और भोजपुरी शब्दों का मिश्रण किया। इस कारण से जनसाधारण को उनकी रचनाओं को समझने में कठिनाई होती है। सन्त सुन्दरदास ने बहुत से पद विरोधाभास अलंकार में लिखे हैं। यदि पाठक प्रयोग किये शब्दों का अर्थ समझ नहीं पाता है तो ऊपरी तौर से एक गंवार का कथन प्रतीत होगा।

सन्त सुन्दरदास सन्त कबीर की भाँति ईश्वर को निराकार मानते थे। एक ईश्वर के अतिरिक्त उन्होंने दूसरे देवी देवता के बारे में एक भी शब्द नहीं कहा। वे धार्मिक विवाद को पसन्द नहीं करते थे। श्रोताओं के प्रश्नों का उत्तर बड़े ही शान्त भाव से देते थे। वे अपनी परिस्थिति से सदैव सन्तुष्ट रहे

वैश्य समाज के दादू पंथी, संत सुन्दरदास की कृतियों में असीम आस्था रखते हैं। उनकी रचनाओं से सामूहिक कीर्तन करते हैं। उनमें उच्च कोटि की शिक्षा होती है जैसे–

**ईश्वर एक और नंहि कोई, ईश शीष पर राखहु सोई।**
**तामें जाति वर्ण है नाहिं, द्वेत भाव कहाँ समाँहि।।**

सन्त राम सुन्दरदास का देहावसान कार्तिक शुक्ल अष्टमी (गोपाष्टमी) बृहस्पतिवार के तीसरे पहर बि. स. 1746 अर्थात् सन् 1689 को हुआ। वे हिन्दु और मुसलमानों आदि में परम आदरणीय रहे।

**

# डॉ. जगदीश चन्द्र जैन

*भारत सरकार ने डॉ. जगदीश चन्द्र जैन के सम्मान में सर्वप्रथम 28 जनवरी 1998 में 2 रूपये की 4 लाख टिकटें जारी की।*

डॉ. जे.सी. जैन का जन्म सन् 1909 उत्तर प्रदेश के एक छोटे से गांव बसेड़ा में हुआ। बाल्यकाल में ही उनके पिता चल बसे थे। आय के साधन के नहीं होने के कारण परिवार को विपन्नता के कारण और कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। डॉ. जगदीश चन्द्र जैन की प्रारम्भिक शिक्षा पाठशाला और गुरुकुल में प्राप्त की थी। जहाँ उनको आदर्श संस्कार प्राप्त करने का अवसर मिला। तत्पश्चात् उन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत, जैन साहित्य और आयुर्वेद का अध्ययन किया।

विद्यार्थी समाचार पत्रों से ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा भारतीय लोगों पर अत्याचारों की जानकारी प्राप्त होने पर भारी आक्रोश और क्रोधित हो उठते थे उनमें देश भक्ति की भावना कुछ भी करने को प्रेरित करती थी। इसी क्रम में डॉ. जैन ने सन् 1929 में पढ़ाई छोड़ दी और वे महात्मा गाँधी द्वारा चलाए जा रहे सत्याग्रह आंदोलन में कूद पड़े। बाद में वे एक शोध छात्र के रूप में शांतिनिकेतन स्थित विश्वभारती विश्वविद्यालय में दाखिल हुए। यहीं गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के सान्निध्य में उनका बौद्धिक विकास हुआ तथा भारत की विरासत की महानता की अनुभूति हुई। उन्होंने ब्रिटिश भारत की रियासत अजमेर में एक स्कूल अध्यापक के रूप में अपना कैरियर शुरू किया। यहाँ पर मुख्याध्यापक ने उसके गाँधी टोपी पहनने पर आपत्ति की। डॉ. जैन ने आत्म सम्मान के सामने नौकरी को गौण माना और तुरन्त उस पद से त्यागपत्र दे दिया। तत्पश्चात् उन्होंने राम नारायण रईया कॉलेज, बम्बई में 30 वर्षों से अधिक समय तक हिन्दी, संस्कृत और प्राकृत के प्रोफेसर के पद पर कार्य किया। डॉ. जैन एक सच्चे गाँधीवादी व्यक्ति थे उनको महात्मा गाँधी के समीप रहने का अवसर मिलता रहता था वे राष्ट्रपिता के हत्या के प्रत्यक्षदर्शी थे इसलिए वे सन् 1948 में, लाल किला, दिल्ली में गाँधीजी की हत्या के सिलसिले में चले मुकदमें में मुख्य गवाह थे। सन् 1970 में डॉ. जैन ने कील (जर्मनी) में भारतीय विद्या विभाग के आमंत्रित अतिथि प्रोफेसर के रूप में 4 वर्षों तक कार्य किया। सन् 1980 में वे भारतीय दर्शन पर व्याख्यान देने ब्राजील गए। उनकी पुस्तक 'जाइनिज़्म' (जैनधर्म) का पुर्तगाली भाषा में अनुवाद किया गया। इस प्रकार डॉ. जगदीश चन्द्र जैन धर्म के विषय में विस्तृत ज्ञान था। उनको जैन विचारधारा और प्राकृत भाषा तथा साहित्य के विश्वविख्यात विशेषज्ञ, डॉ. जैन ने अनेक शोध पत्रों के अतिरिक्त 80 से अधिक पुस्तकें लिखीं। उन्हें अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कार मिले, जैसे सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, उत्तर प्रदेश शासन पुरस्कार, ज्ञान भारती पुरस्कार, अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा पुरस्कार आदि हैं।

**





# आचार्य तुलसी

*भारत सरकार ने आचार्य तुलसी के सम्मान में सर्वप्रथम 20 अक्टूबर 1998 को 3 रुपये की 14 लाख डाक टिकटें जारी की।*

आचार्य तुलसी का जन्म 20 अक्टूबर 1914 को राजस्थान प्रान्त के नागौर जिले के एक कस्बे लाडनूं में हुआ। उनके पिता जी का नाम झूमरमल और माता जी का नाम वंदना था। आचार्य तुलसी के परिवार ने दुख और दीनता के समय का सामना करना पड़ा। वे जब मात्र तीन वर्ष के थे उसके पितामह राजरूप जी का और पाँच वर्ष की आयु होने पर पिताजी का साया उठ गया। 6 (छः) भाइयों के परिवार के जीवन यापन का उत्तरदायित्व उसकी मां और बड़े भाई मोहन लाल ने सम्भाला। उस समय उन पर कर्ज की देनदारी थी मोहनलाल बहुत बुद्धिमान और साहसी युवक थे। उसने परिवार के खर्चों को पूरा करते हुए सारे कर्ज को चुकाया। घर में बड़ों के आचरण और दिनचर्या का परिवार के सदस्यों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है उनकी माताश्री वन्दना जी का प्रतिदिन सतियों के दर्शन करने, व्याख्यान सुनने और सेवा करने में समय व्यतीत होता था वह इस कार्यों में बालक तुलसी को साथ रखती थी और धार्मिक आचरण के लिए उत्साहित करती थी। उन्होंने बचपन से ही बीड़ी, सिगरेट, चिलम, तम्बाकू, भांग, गांजा, सुलफा और शराब आदि नशीली वस्तुओं का परित्याग रखा। कभी पान तक नहीं खाया। आचार्य तुलसी को विद्याध्ययन में बड़ी रुचि थी वे गाँव में स्थित नन्दलाल जी ब्राह्मण की पाठशाला में 6-7 वर्ष की आयु में जाने लगे थे तत्पश्चात् हीरालाल जी बज जैन के यहाँ पढ़े। उन्होंने हिन्दी और गणित के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा कभी नहीं पढ़ी। आचार्य तुलसी खेलकूद में कम ही जाया करते। उनमें तेज समझ और नेतृत्व देखकर, अध्यापक अन्य छात्रों को पढ़ाने, पुस्तकों के विक्रय आदि का काम करने दे देते थे। इस प्रकार बाल-जीवन में ही उनमें प्रौढ़ता निखर उठी थी। बचपन में ही उन्होंने पच्चीस बोल, चर्चाहित शिक्षा के पच्चीस बोल, जाणपणा के पच्चीस बोल, नमस्कार मंत्र, सामायिक, पंचपद वंदना आदि कण्ठस्थ कर ली थी। यह राजस्थानी कहावत, "ज्ञान कण्ठा और दाम अण्टा" के अनुरूप बहुत उपयोगी सिद्ध हुई।

आचार्य तुलसी ने बचपन में ही उच्च चरित्र और आदर्श आचरण अपनाया। आर्थिक तंगी के कारण गायों को बेच देना पड़ा था। जब उसकी माँ पास पड़ोस से छाछ मांग कर लाने के लिए कहती थी तो उसको बहुत बुरा लगता था। इस प्रकार के

वातावरण के कारण आचार्य तुलसी ने 11 (ग्यारह) वर्ष की आयु में ही बड़े नाटकीय ढंग से दीक्षा लेने का प्रस्ताव रखा। लाडनूं में श्री कालूगणी व्याख्यान कर रहे थे। जिसमें बालक तुलसी भी भाग लेने गया। व्याख्यान के बीच ही खड़े होकर बोले—"गुरुदेव! मुझे आजीवन व्यापारार्थ परदेश जाने और विवाह करने का त्याग करवा दीजिए।"

गुरुदेव कालूगणी ने कहा, "तू अभी बालक है, त्याग करना बड़ी बात है।" बालक तुलसी पर इस उत्तर से कोई प्रभाव नहीं पड़ा और बोले, "गुरुदेव! आपने त्याग नहीं करवाये, किन्तु मैं आपकी साक्षी में आजीवन व्यापारार्थ परदेश जाने और विवाह का त्याग करता हूँ।" यह ग्यारह वर्ष के बालक तुलसी का आग्रह था परन्तु गुरु जी परिवार के मुखिया की बिना लिखित अनुमति के दीक्षा नहीं दे सकते थे। बड़े भाई मोहनलाल को तार देकर बंगाल से बुलाया गया। मां और इस भाई ने बालक तुलसी को मनाने का प्रयास किया परन्तु वे सफल नहीं हुए। बालक तुलसी की दीक्षा के बाद धार्मिक ज्ञान ग्रहण और शिक्षा आरम्भ हो गई। उसके भाई चम्पालाल पहले ही दीक्षा लें चुके थे। जीवन चर्या में प्रातः चार बजे जागना और दस बजे सोना, साधुचर्या का पालन, अध्ययन स्मरण आदि शुरू हो गया। उन्होंने 11 (ग्यारह) वर्षों में 20 (बीस) हजार श्लोक कण्ठस्थ किये। कविता का लेखन आरम्भ कर दिया। पट्टोत्सव, मर्यादोत्सव आदि विशेष अवसरों पर कविता बोलते तो श्रोता मुग्ध हो जाते। कालू उपदेश वाटिका, "भरत मुक्ति", 'आषाढभूति', अग्नि परीक्षा आदि अनेक गीति संग्रह और खण्ड काव्यों की रचना की। "जैन सिद्धान्त दीपिका", श्री भिक्षु न्यायकर्णिका" "आत्मानुशासन" महत्त्वपूर्ण धार्मिक पुस्तकें समाज को दी।

तुलसी की विद्वता और आचार-व्यवहार गुरुजी की निरन्तर निगाहों में रहा। गुरु जैन श्वेताम्बर तेरा पंथ धर्मसंघ के अष्माचार्य श्री कालूगणी ने 22 (बाइस) वर्ष की आयु में उनको धर्मसंघ का आचार्य नियुक्त किया।

तुलसी 'आचार्य' घोषित होने के बाद जैन धर्म में व्याप्त रूढ़ियों को उखाड़ने के कार्य में जुट गये। उन्होंने 2 मार्च 1949 से अनुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया। जिसका मुख्य उद्घोष "संयम ही जीवन है" था। इसमें छोटे-छोटे संकल्प शामिल थे जो मानव जीवन में चरित्र शोधन, परस्पर सद्भाव, दूसरों के लिए त्याग की भावना को पैदा करता है। इसका सभी व्यक्तियों ने स्वागत किया। 1992 में आचार्य तुलसी को 'इंदिरा गांधी एकता पुरुस्कार" दिया गया। 1955 में उन्होंने जैन धर्मवैधानिक साहित्य के अनुसंधान का काम आरम्भ किया। 32 आगमों का समीक्षात्मक संस्करण प्रकाशित करवाया। 1971 में "जैन विश्व भारती" की लॉडनूं में स्थापना की जिसे





भारत सरकार व विश्व विद्यालय अनुदान आयोग ने 1991 में 'मान्य विश्व विद्यालय' का दर्जा दिया और आचार्य तुलसी को प्रथम अनुशास्ता के रूप में मान्यता प्रदान की। यह आचार्य तुलसी की विद्वता और योग्यता से सम्भव हो सका।

आचार्य तुलसी ने संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी भाषा में 50 से अधिक ग्रन्थों की रचना की। वे तेरापंथ जैन धर्म के प्रचारक रहे। सभी धर्म और सम्प्रदायों को समान मानते थे। तिब्बती बौद्ध शोध संस्थान, सारनाथ की ओर से दलाई लामा ने 1992 में उनको वाक्पति (डी.लिट) की उपाधि से विभूषित किया। आचार्य पद प्राप्त करने की रजत जयन्ती के अवसर पर उपराष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने 1962 में गंगाशहर (बीकानेर) में "आचार्य तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ' भेंट करके सम्मानित किया। उन्होंने अपनी पुस्तक "लिविंग विद ए परपज" में अणुव्रत आन्दोलन के विषय में उल्लेख भी किया था। 1974 में उनके 60 वे जन्म दिन के अवसर पर भारत के राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद ने उन्हें दिल्ली में "षष्टिपूर्ति' ग्रन्थ भेंट किया। 1972 में जैन संघ ने उन्हें "युग प्रधान आचार्य" की उपाधि प्रदान की और उसे भारत के राष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरी की ओर से दिया गया। 1985 में राजस्थान विद्यापीठ (मान्य विश्वविद्यालय) द्वारा प्रदत्त सर्वोच्च उपाधि "भारत ज्योति" भारत के राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह द्वारा उदयपुर में प्रदान की गई।

आचार्य तुलसी समय-समय पर राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में अपना योगदान देते रहते थे। उन्होंने इसके लिए लगभग 1 (एक) लाख किलोमीटर पदयात्रा की। 1966 में तामिलनाडू में हिन्दी भाषा का विरोध, "राजीव लोगोंवाल" समझौते, 1994 में संसद में राजनीतिक गतिरोध को समाप्त करने आदि में उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस प्रकार के कार्यों से आचार्य तुलसी ने न केवल सारे देश में, वरन् अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्ति की। 1994 में उन्होंने आचार्य का पद त्याग कर एक उदाहरण पेश किया। 23 जून 1997 को 83 वर्ष की अवस्था में गंगा शहर (राजस्थान) में आचार्य तुलसी ने महाप्रयाण किया।

**

# द हिन्दुस्तान टाइम्स (1924–99)

*भारत सरकार ने द हिन्दुस्तान टाइम्स को प्रकाशित होते हुए 16 दिसम्बर 1999 को 75वां वर्ष पूर्ण करने पर सर्वप्रथम 15 रुपये की 10 लाख डाक टिकटें जारी की।*

इन दिनों इस समाचार पत्र का प्रबन्धन बिडला घराने के पास है स्वाधीनता आन्दोलन के दिनों में इसे घनश्यामदास बिडला ने चलाया था जिनका जीवन परिचय इस पुस्तक में दिया है। इस समाचार पत्र के माध्यम से उन्होंने राष्ट्र की जो सेवा की थी उसके लिए भारत सरकार ने डाक टिकटें जारी की थी। द हिन्दुस्तान टाइम्स, जो कि देश के प्रमुख समाचारपत्रों में से एक है, उसकी शुरुआत 1924 में दिल्ली में एक सांध्य दैनिक के रूप में की गई थी। 24 सितम्बर, 1924 को इसके प्रथम अंक का उद्घाटन महात्मा गांधी ने किया था जिसमें मोतीलाल नेहरू, मुहम्मद अली जिन्नाह तथा जवाहरलाल नेहरू के लेख प्रकाशित किंए गए थे। 1925 में इस समाचारपत्र का स्वामित्व पंडित मदन मोहन मालवीय के हाथों सौंप दिया गया।

इस समाचारपत्र की प्रवृत्ति देशभक्तिपूर्ण होने के कारण इसे कई बार ब्रिटिश साम्राज्य के कोपभाजन का पात्र बनना पड़ा। 1930 में नमक सत्याग्रह के परिणामस्वरूप बनाए गए कठोर प्रेस विरोधी कानून के विरोध में इसका प्रकाशन बंद कर दिया गया। अगले वर्ष जब शासकों ने प्रेस को जवाहरलाल नेहरू के कुछ उत्तेजक भाषणों को दबाने के आदेश दिए तब हिन्दुस्तान टाइम्स ने एक कामचलाऊ प्रेस स्थापित किया और उन भाषणों का एक संग्रह मुद्रित करवाया तथा उसकी हजारों प्रतियां देश के प्रत्येक भाग में पहुंचाई गई। इसके परिणामस्वरूप, इसे ब्रिटिश दमन का सामना करना पड़ा और अपने राष्ट्रवादी उत्साह की बागडोर थामने के कारण यह समाचारपत्र भारी भरकम जमानत देने के लिए विवश हो गया।

जिस समय इसका दिवालिया होना निश्चित हो गया उसी समय जी.डी. बिरला ने, जो एक पथप्रदर्शक और दिव्यदृष्टा थे, इसे संभाला। वे समाचारपत्र को एक ऐसी महान संस्था के रूप में परिपोषित करने के कार्य में जुट गए जिसके परिष्कृत संपादन और प्रबंधकीय प्रतिभा ने लोगों को आकर्षित किया। एक ऐसे युग में, जब लंबे संपादकीय तथा मूल-भाषण की रिपोर्टिंग का प्रचलन था, हिन्दुस्तान टाइम्स ने लघु





संपादकीय, विभिन्न प्रकार की घटनाओं की रिपोर्टिंग करने का साहस किया और मुखपृष्ठ के समाचारों को मोटे शीर्षकों के साथ प्रकाशित किया।

एक के बाद एक आने वाले प्रतिभाशाली सम्पादकों के प्रयासों के कारण ब्रिटिश शासकों और शिक्षित वर्ग के लिए इस समाचारपत्र की उपेक्षा करना असंभव हो गया। यह समाचारपत्र विभिन्न प्रकार के प्रतिभावान पत्रकारों की नर्सरी भी बन गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्र निर्माण और देश के उद्भव एवं विकास के सरकार के प्रयासों में इस समाचारपत्र ने अपना भरपूर सहयोग दिया। लोकतंत्र, स्वतंत्र उद्यम और उदारवादी मूल्यों के प्रति कटिबद्धता के कारण हिन्दुस्तान टाइम्स ने अपनी निष्पक्ष छवि के लिए अपने पाठकों के बीच प्रतिष्ठा पाई। सत्तर के दशक के प्रारंभ में हिन्दुस्तान टाइम्स ने एक अनूठा सामाजिक प्रयोग किया जिसका नाम था 'ॲवर विलेज छतेरा'। इस परियोजना में एक गांव के विकास कार्यों को अपने हाथों में लिया गया जैसे स्कूल एवं स्वास्थ्य क्लिनिक की स्थापना करना और आय प्राप्त होने वाले कार्यों को शुरू करना आदि। सामाजिक कार्यों के प्रति प्रतिबद्धता के कारण समाचारपत्र को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सभी संस्थाओं से प्रतिष्ठा मिली।

हाल के वर्षों में जनसंचार माध्यमों में आए प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों के अनुसार हिन्दुस्तान टाइम्स ने भी अपने को इसी अनुरूप ढाल लिया है। इसके पास छपाई के आधुनिक उपकरण हैं। समाचार प्राप्त करने और मुद्रण की प्रक्रिया का पूर्ण कम्प्यूटरीकरण कर दिया गया है। मुख्य पृष्ठ पर आकर्षक रंगीन पुल-आउट और सूचना प्रधान लेखों आदि के अलंकरण द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स ने पाठकों की बदलती रुचि को पूरा करने के क्षेत्र में भी सफलता हासिल की है।

**

# पोट्टि श्रीरामुलु

*भारत सरकार ने पोट्टि श्रीरामुलु के सम्मान में सर्वप्रथम 16–3–2000 को 3 रूपये की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।*

पोट्टि श्रीरामुलु का जन्म 1901 ई. में आन्ध्र प्रदेश के नेल्लौर जिले में हुआ। वे सच्चे गांधीवादी थे।

महात्मा गांधी के दर्शन तथा उपदेशों से पूरी तरह प्रभावित होकर, सभी सांसारिक अभिलाषाओं को त्यागकर स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े थे। उन्होंने अनेक अवसरों पर सत्याग्रह आंदोलन में भाग लिया तथा 1930 में नमक सत्याग्रह आंदोलन और 1940 में वैयक्तिक सत्याग्रह आंदोलन के दौरान गिरफ्तारी दी। बाद में वे अपने गृह प्रान्त नेल्लौर लौट आए तथा कृष्णा जिले में गांधी आश्रम से जुड़ गए। उन्होंने हरिजनों के उत्थान तथा अस्पृश्यता के उन्मूलन के लिए स्वयं को तन-मन-धन से समर्पित कर दिया। जब उन्हें यह पता चला कि उनके गृह प्रान्त नेल्लौर में हरिजनों को मंदिरों में प्रवेश की मनाही हैं तब गांधी जी से आशीर्वाद लेकर उन्होंने 23 दिन तक उपवास रखा जिसके परिणामस्वरूप नेल्लौर में हिन्दू समुदाय का रूढ़िवादी वर्ग उनके सामने झुक गया और हरिजनों को मंदिरों में प्रवेश की अनुमति दे दी गई। उन्होंने इसके बाद भी अनेक अवसरों पर हरिजनों के उद्धार के लिए कार्य किया तथा इस मुद्दे पर संयुक्त मद्रास राज्य की सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए 29 दिन तक उपवास रखा। यह उपवास तभी समाप्त हुआ जब मुख्यमंत्री ने यह आश्वासन दिया कि राज्य सरकार हरिजनों की दशा में सुधार लाने के लिए सभी संभव प्रयास करेगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आन्ध्र प्रदेश मद्रास प्रान्त का भाग था। पोट्टि श्रीरामुलु संयुक्त मद्रास राज्य में से पृथक आंध्र राज्य का गठन करने की आवश्यकता के बारे में पूरी तरह आश्वस्त थे तथा इस मांग को लेकर उन्होंने 19 अक्टूबर, 1952 से उपवास रखना प्रारंभ किया। अट्ठावनवें दिन उन्होंने उपवास के कारण अंतिम सांस ली तथा इस प्रकार उस मांग को लेकर उन्होंने अपने प्राण न्यौछावर कर दिए जो उनके लिए अत्यंत पवित्र थी। उनके निधन के कुछ दिन बाद केन्द्र सरकार ने घोषणा की कि संयुक्त मद्रास राज्य में से पृथक आंध्र राज्य का गठन किया जाएगा। इस प्रकार आंध्र प्रदेश को एक अलग प्रान्त देखने की अभिलाषा उनके जीवन में पूरी नहीं हो पाई। पोट्टि श्रीरामुलु को आंध्र के लोगों की अभिलाषाओं के प्रतीक के रूप में याद किया जाता है। वे वास्तव में भारतीयों की उस अजेय भावना का प्रतीक थे जिससे देश को स्वतंत्रता मिली और भारतीय राष्ट्रका अभ्युदय हुआ। सरकार ने आंध्र प्रदेश के नेल्लौर जिले का नाम पोट्टि श्रीरामुलु के नाम पर किया गया है।

**





# डी.एन. जटिया

*भारत सरकार ने श्री डी.एन. जटिया के सम्मान में सर्वप्रथम 11 दिसम्बर 2000 को 15 रुपये की केवल 50 हजार डाक टिकटें जारी की।*

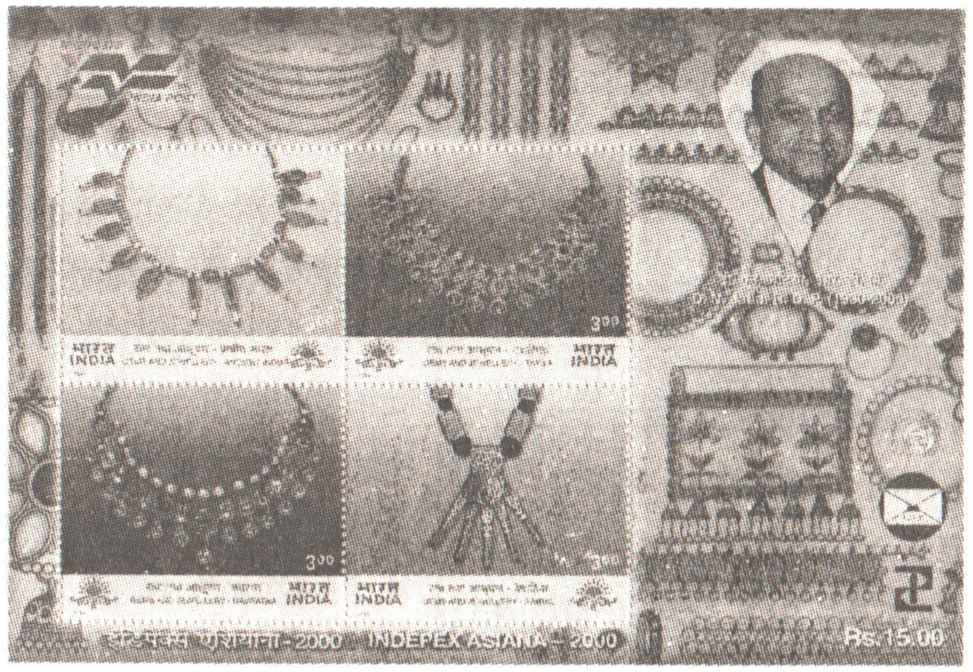


डाक विभाग की स्थापना ब्रिटिश शासन ने अपने विभिन्न विभागों के पत्र पहुंचाने के लिए की थी। जन-साधारण को भी अपने पत्र भेजने की आवश्यकता पड़ी। उस समय पालतू सपेक्ष कबूतर का पत्र वाहक के रूप में प्रयोग किया जाता था। इस साधन से अनेकानेक खतरों का सामना करना पड़ा। इस साधन से पत्र के पहुंच जाने का पुख्ता विश्वास भी नहीं था। डाक विभाग को जनसाधारण के लिए प्रस्तुत करने के साथ डाक-टिकटों का प्रचलन आरम्भ हुआ।

डाक-टिकटों को संग्रह करना उनके डिजाइनों के बदलते रहने के साथ आरम्भ हुआ। यह ऐसा शौक है जिसे अभी जनसाधारण ने पूर्ण रूप से देश में अपनाया नहीं है। इसका सारे संसार में एक पूरा तन्त्र स्थापित हो चुका है और करोड़ों रूपयों का क्रय-विक्रय होता है। श्री डी.एन. जटिया एक ऐसे विलक्षण प्रतिभा के व्यक्ति थे जिन्होंने इस शौक की तकनीक को समझा और विदेशियों के एकाधिकार में सेंध लगाई। श्री जटिया का जन्म 1930 के वर्ष एक धनाढय वैश्य परिवार में हुआ। उन्होंने देश में 1975 में 'फिलाटेलिक कांग्रेस आफ इंडिया' की स्थापना की। उन्होंने डाक-टिकटों के बारे में विशेषता ग्रहण की। इसके आधार पर वे 1981 से 1987 तक इंटर एशिया फिलाटेलिक फेडरेशन के अध्यक्ष रहे। उनके ज्ञान और निपुणता की ख्याति संसार में फैलती गई। अभी तक विश्व स्तर की संस्था पर यूरोपियनों का वर्चस्व था। डी.एन. जटिया की विद्वता अद्वितीय थी इसके आधार पर उन्होंने यूरोपियनों का एकाधिकार समाप्त करने में सफलता प्राप्त की। वे 1990 में ''इंटरनेशनल फिलाटेनिक फेडरेशन'' के अध्यक्ष बने। वे इस पर 1998 तक रहे। ब्रिटेन के सम्राट जार्ज पंचम को भी डाक टिकट संग्रह करने का शौक था। उन्होंने

इस शौक को महत्त्व देने के लिए प्रमुख डाक टिकट संग्रहकर्त्ताओं के हस्ताक्षर से एक रोल प्रारम्भ किया। इस दिनों ऐसे व्यक्ति को बहुत सम्मानित माना जाता है उसको 'आर.डी.पी. अर्थात रोल आफ डिस्टीन्गविश्ड फिलाटेलिक' कहा जाता है। श्री जटिया ऐसे पहले भारतीय व्यक्ति हैं। जिनको यह गौरव प्राप्त हुआ।

प्रारब्ध अपने मार्ग से चलता है। इस महान विद्वान का 2 नवम्बर 2000 को देहावसान हुआ। क्योंकि डी.एन. जटिया डाक विभाग की टिकटों के निपुण विशेषज्ञ थे। इस विभाग ने उनको श्रद्धांजलि स्वरूप उसी वर्ष 11 दिसम्बर को 15 रुपये मूल्य की डाक टिकट जारी की। इस डाक टिकट की केवल 50 हजार टिकटें जारी करने का अर्थ यह नहीं कि उनको अन्य महापुरुषों से कम महत्त्व दिया गया। वरन् यदि कोई उन पर छपी टिकट को एक बार देख ले तो पता चलेगा कि वे टिकटें कितनी महत्त्वपूर्ण थीं। उसका आकार देखकर ही ठीक अनुमान लग जायेगा कि वे पत्र आदि भेजने के हेतु तो प्रयोग नहीं हुई होंगी। जिन 50 हजार भाग्यशाली व्यक्तियों को उपलब्ध हुई वे अवश्य अपने भाग्य को सराह रहे होंगे क्योंकि विशेष टिकटों का विक्रय-मूल्य हजारों रूपयों में आंका जाता है। क्या अब एक जन-साधारण व्यक्ति यह समझेगा कि डाक-टिकट संग्रह का शौक भी एक अर्जन का साधन बन सकता है?

**नोट** : डाक विभाग समय-समय पर स्मारक (मिनेचर शीट) शीट प्रकाशित करता है। भारतीय आभूषणों-रत्नों पर जारी मीनेचर शीट पर डी.एन. जटिया की भी फोटो देकर उन्हें देश का एक रत्न माना है। किसी भी वैश्य व्यक्ति पर यह पहली व अब तक प्रकाशित एकमात्र मिनेचर शीट है।

श्री देवकीनन्दन जटिया मारवाड़ी अग्रवाल परिवार से हैं। मारवाड़ी समाज न केवल भारत में अपितु संसार के अनेक देशों में बसा हुआ है। मारवाड़ी समाज जन हितेषी कार्यों में सदैव अग्रणी रहा है।

नेपाल सरकार ने मारवाड़ी समाज **'गोल्डन जुबली संवत 2010-2060'** पर एक डाक टिकट जारी किया है।

**ओम प्रकाश अग्रवाल**

******





# भामाशाह

*भारत सरकार ने भामाशाह के सम्मान में सर्वप्रथम 31 दिसम्बर 2000 को 3 रुपये की 4 लाख डाक टिकट जारी की।*

भामाशाह का जन्म आषाढ़ शुक्ल दसवीं (28 जून 1547 ईस्वी) को हुआ था। वे महाराणा प्रताप से सात वर्ष छोटे थे उनके पिता जी का नाम महाजन भारमल था जो कावडिया गौत्र के ओसवाल वैश्य थे। राणा सांगा ने उनको अलवर से बुलाकर रणथम्भौर के किले का मुखिया बनाया। बाद में हाड़ा सूरजमल को यह पद प्रदान किया गया उस समय भी वे वहाँ महत्त्वपूर्ण कार्य करते रहे। भामाशाह के भाई का नाम ताराचंद था। ये दोनों भाई वीर प्रकृति के पुरुष थे। ताराचन्द गोडवाड का हाकिम था और उस समय सादडी में रहता था उसने सादड़ी के बाहर बावड़ी और बारहदरी बनवाई। 28 फरवरी 1572 को 32 वर्ष की आयु में महाराणा प्रताप मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। वह अपने पिता राणा उदयसिंह का सबसे बड़ा पुत्र था। वे भटियाणी मनी से अधिक प्यार करते थे इसलिए मृत्यु से पूर्व उसने उत्पन्न पुत्र जगमाल को उत्तराधिकारी घोषित किया। महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के बाद कुछ सरदार राणा प्रताप को गद्दी पर बैठाना चाहते थे और कुछ राणा उदयसिंह की इच्छानुसार जगमाल को चाहते थे। राणा प्रताप सबसे बड़ा पुत्र होने के कारण, सरदारों का बहुमत उस के पक्ष में रहा और उनको गद्दी पर आसीन किया गया। इस घटना से रूष्ट होकर जगमाल मुगल बादशाह अकबर से जा मिला। मुगल बादशाह राजपूतों पर आधिपत्य के लिए निरन्तर प्रयत्न कर रहा था। उसने जगमाल का खुली बाहों से स्वागत किया और जहाजपुर का परगना जागीर में दिया।

जगमाल की भाँति आमेर, बीकानेर, जोधपुर और जैसलमेर आदि राजघरानों ने अपनी बहिन-बेटियों के विवाह अकबर के साथ करके उसकी आधीनता स्वीकार कर ली थी। उनमें कंवर मानसिंह, राजा भगवान दास और राजा टोडरमल आदि प्रमुख हैं, जिन्होंने कई बार राणा प्रताप से मुलाकात करने इस दिशा में प्रयत्न किये। राणा प्रताप ने मुगलों की आधीनता स्वीकार नहीं की। इस कारण से उनके प्रकोप का सामना करना पड़ा। 21 जून 1576 को उन्होंने हल्दी घाटी में अकबर की सेना से लोहा लिया। इसमें राणा प्रताप की विजय बहुत पास थी परन्तु सरदारों से तालमेल की कमी के कारण पराजय का सामना करना पड़ा।

इसके बाद राणा प्रताप से पुनः सेना का गठन किया। कुम्भलगढ़ में अकबर की सेना से शाहबाजखाँ की कमान में सामना हुआ। यहाँ पर रसद की कमी के कारण मैदान छोड़ देना पड़ा।

मुगल बादशाह अकबर के आदमी राणा प्रताप का निरन्तर पीछा कर रहे थे इस परिस्थिति में उनको भूमिगत जीवन व्यतीत करना पड़ा। वह जसवंतपुरा से होता हुआ ढोलान नामक गाँव में आकर रहने लगा। यहाँ भील जाति के व्यक्ति रहते थे और वे अपने पर्व सामूहिक रूप से मनाते थे। जिनमें उनका सरदार भी भाग लेता था। महाराणा प्रताप वीर पुरूष तो था ही ओर उसके अनुरूप कद और काठी भी थी। कबीले के सरदार को उसे पहचानने में देर नहीं लगी। उसने राणा प्रताप को अभूतपूर्व सम्मान दिया और प्रतिज्ञा की कि सम्पूर्ण भील जाति उसका हर प्रकार से साथ देगी। उन्होंने मुगल साम्राज्य से लड़ने में धन की कमी को स्वीकार किया। इस घटना का समाचार भामाशाह के कानों में पहुँचा तो उसकी देशभक्ति और स्वाधीनता के प्यार ने उसको व्याकुल बना दिया। इसके लिए भामाशाह अपने कारिन्दों और सीमित सम्पत्ति साथ लेकर उसके शिविर में पहुँचा। राणा प्रताप की हालत देखकर उसकी आंखों में आंसू भर आये और बड़े ही मार्मिक भाव में बगल में सम्भाले हुए सोने के थाल में अपने खजाने की चाबी भेंट की। राणा प्रताप भामाशाह के इस उपहार से भाव विह्वल हो गये। उसको आलिंगन में कसते हुए बोले, "जिस देश में दानवीर भामाशाह जैसे देशभक्त हो, उस देश को कोई पराधीन नहीं रख सकता।" राणा प्रताप ने न चाहते हुए भामाशाह का प्रस्ताव स्वीकार किया और अपनी सेना को पुनर्गठित करके 1583 ई. में सर्वप्रथम कुम्भलगढ़ को मुगलों से छीना। मेवाड़ को प्राप्त करने के लिए पुनः हल्दीघाटी की लड़ाई हुई जिसमें राणा प्रताप की जीत हुई। इसके पश्चात मुगल बादशाह ने राणा प्रताप को जीतने का प्रयास नहीं किया। वह अपनी मृत्यु 19 जनवरी 1597 तक राज करता रहा। इस विजय के उपरान्त राणा प्रताप ने विजय स्तम्भ बनवाया जिसमें भामाशाह की दानवीरता का मुख्यरूप से वर्णन किया गया। इससे दानवीर भामाशाह सदा के लिए अमर हो गया। भामाशाह की मृत्यु 11 जनवरी 1600 को हुई। भामाशाह को 4 (चार) सौ से भी अधिक वर्ष हो गये हैं किसी व्यक्ति की दानकारिता में आज भी भामाशाह का नाम लेकर प्रशंसा की जाती है आज उनका नाम घर-घर में जाना जाता है और आदर सम्मान से पुकारा जाता है।

**





## जैन प्रतीक

*भारत सरकार ने भगवान महावीर के 2600 वें जन्म–दिवस के उपलक्ष्य में सर्वप्रथम 6 अप्रैल 2001 को 3 रूपये की 30 लाख डाक टिकटें जारी की।*

महान् जैन परम्परा के 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म बिहार में वैशाली जिले में एक राजकुल में हुआ था। उनके पिता, राजा सिद्धार्थ इस क्षेत्र के शासक थे व माता त्रिशला राजा चेटक की पुत्री थीं।

महावीर का बचपन का नाम वर्द्धमान था। जब वह बच्चे थे, तभी से वे करुणायय हृदय के स्वामी थे और उनका झुकाव अध्यात्म की ओर था। उनकी संवेदनशील और चिंतनशील प्रकृति ने उन्हें विभिन्न बुराइयों के कारणों और उनके निवारण की खोज करने के लिए प्रेरित किया जो उन्होंने समाज में चारों ओर देखी। 30 वर्ष की आयु तक गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के उपरांत, उन्होंने सत्य की खोज करने के लिए संसार का परित्याग कर दिया और संयासी बन गए। उन्होंने बारह वर्षों तक विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया और एक आत्मसाधक, तपस्वी, आत्मसंयमी और आत्मशोधक का जीवन व्यतीत किया। बयालीस वर्ष की आयु में उन्हें ईश्वरीयज्ञान (केवलज्ञान अथवा कैवल्य) प्राप्त हुआ और कठोर साधना द्वारा जीवन और विश्व में व्याप्त सभी समस्याओं का समाधान मिल गया। इस प्रकार, कैवल्य द्वारा उन्होंने सुख और दुःख पर विजय प्राप्त की। उनकी इस विजय के कारण उन्हें महावीर के रूप में जाना जाने लगा।

महावीर ने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य के पांच महान् सिद्धांतों की शिक्षा दी। उन्होंने समस्त प्राणि–जगत के प्रति प्रेम और करुणा का संदेश दिया। उनकी मान्यता थी कि मोक्ष और कुछ नहीं है वरन् आत्मिक परितोष है। संसार में व्यक्ति इसका अनुभव अपने सुविचारित प्रयासों द्वारा कर सकता है। उनका मत था कि मनुष्य अपने भाग्य का स्वामी स्वयं है और प्रत्येक आत्मा में इतनी क्षमता है कि वह परमसिद्धि तक उठकर चरमावस्था को प्राप्त कर सके, जिसे प्राप्त करने पर वह पुनर्जन्म के बंधन से मुक्त हो जाती है। भगवान महावीर ने अपने धर्म में स्त्रियों और पुरुषों को बिना किसी भेदभाव के दीक्षित किया। उन्होंने समाज में प्रचलित सभी बुराइयों के विरुद्ध धर्मयुद्ध छेड़ा।

अहिंसा और अनेकांत महावीर के उपदेशों का मर्म थे। उन्होंने अपने

अनुयायियों को किसी भी जीव की हत्या न करने, किसी को पीड़ा न पहुंचाने, किसी को दास न बनाने, किसी को यातना न देने और किसी का शोषण न करने का उपदेश दिया। द्वेष और शत्रुता, लड़ाई-झगड़ें ओर सिद्धांतहीन शोषण के संघर्षरत विश्व में जैन धर्म का अहिंसा का उपदेश न केवल मनुष्य के लिए बल्कि जीवन के सभी रूपों के लिए एक विशेष महत्व रखता है। जैन दर्शन में अहिंसा अपने शाब्दिक अर्थ की अपेक्षा अत्यंत व्यापक अभिधार्थ रखती है। इसमें करुणा, सहानुभूति, दान, विश्वबंधुत्व और सर्वक्षमा समाविष्ट हैं। अनेकांत और उसका मर्म अहिंसा प्रतिकूल चिंतन और विचार जागृत होने पर सहिष्णु बने रहने का उपदेश देता है।

भगवान महावीर के उपदेश शाश्वत प्रासंगित है और यदि इन्हें व्यवहार में लाया जाए, तो न केवल ये किसी के भी जीवन को नया अर्थ देंगे बल्कि विश्व को भी रहने के लिए अत्यंत बेहतर स्वरूप प्रदान करेंगे।

**





# चन्द्रगुप्त मौर्य

*भारत सरकार ने चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्मान में सर्वप्रथम 22–07–2001 को 4 रुपये की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।*

चन्द्रगुप्त का प्रादुर्भाव 324 ईसापूर्व माना गया है उन्होंने मगध पर राज किया जिसकी पाटलिपुत्र राजधानी थी। वे सम्राट अशोक के पितामह थे। भारतीय मुद्रा व करन्सी नोटों पर शेर का चिन्ह अशोक द्वारा निर्मित स्तम्भ से लिया गया है। चन्द्रगुप्त काल का प्रमाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं है। मेगास्थनीज को सेल्यूकस ने भेजा था उसने उस काल में जो देखा उसका विवरण लिखा। दुर्भाग्य से उसके अध्याय तितर-बितर हो गये थे। जो पृष्ट प्राप्त हुए, उनसे उस काल का इतिहास प्राप्त हुआ। चन्द्रगुप्त के साथ 'मौर्य' वंश प्रारम्भ हुआ और उनका शासन काल 'स्वर्ण-युग' कहलाया। 'मौर्य' शब्द मयूर पक्षी के नाम से निकला हुआ बताया गया है मौर्यवंश सूर्यवंशियों से सम्बन्धित था। चन्द्र-गुप्त की वंश परम्परा की जानकारी नहीं मिलती परन्तु मान्यता के अनुसार उनको मयुर-पोषकों के गाँव के मुखिया की पुत्री से उत्पन्न हुआ बताया गया है।

चन्द्रगुप्त के गद्दी आसीन होने से पूर्व, मगध पर नन्द राजा का शासन था वह बहुत अत्याचारी और निर्दयी था। उसके शासन काल में सिकन्दर ने भारतीय क्षेत्रों पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की थी। चन्द्रगुप्त गुप्त रूप से सिकन्दर से मिला था उसका मत था कि सिकन्दर को भारतीय जनता ने जितवाया था क्योंकि राजा जनता के पालक न होकर उसके घातक बन गये थे। चन्द्रगुप्त की भाँति राजनीति के आकाश में तक्षशिला से एक ब्राह्मण पुत्र कौटिल्य (जिसे चाणक्य या विष्णुगुप्त भी कहते थे) का उदय हुआ। वह नन्दवंश का कट्टर-विरोधी था और किसी भी युक्ति से उसका सर्वनाश चाहता था कौटिल्य ने चन्द्रगुप्त में एक शासक के सभी गुण पाये और उसे एक विशाल सेना खड़ी करने में सहायता की। नन्द पर विजय के कुछ समय बाद चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस से युद्ध छेड़ा और पराजित कर दिया। सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त से मित्रता कर ली जिसे रिश्तेदारी में परिवर्तन अपनी पुत्री का विवाह करके किया। चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस को 500 (पाँच सौ) हाथी पुरस्कार में दिये।

चन्द्रगुप्त ने सेल्युकस से संग्राम के पश्चात् अपने राज्य की सीमा का विस्तार किया और प्रजा की सुख-सुविधाओं के लिए कोटिल्य के सिद्धान्तों के आधार पर शासन व्यवस्था को चुस्त और दुरुस्त किया। उसके राज्य की सीमा केवल बिहार, उड़ीसा एवं बंगाल तक ही नहीं थी। इसमें पश्चिमी और उत्तर-पश्चिमी और दक्षिण को मिलाकर एक बड़ा साम्राज्य खड़ा कर लिया था। केरल, तमिलनाडु तथा पूर्वोतर भारत के भूभाग को

छोड़कर मौर्यवंश ने पूरे उप महाद्वीप पर शासन किया। उसके आधीन उत्तर-पश्चिम के वे प्रदेश भी थे जिन पर ब्रिटिश साम्राज्य अधिपत्य प्राप्त नहीं कर पाया था। इस प्रकार चन्द्रगुप्त का साम्राज्य उत्तर में हिमालय पर्वत से लेकर दक्षिण में सागर तक फैला था पश्चिम में सौराष्ट्र तक उसकी सीमा थी। उन दिनों भारतीय सिन्धू नदी के आसपास हरात, कंधार, मकरान और काबुल थे जो पहले ईरानी राज्य के अन्तर्गत थे। ऐसा विश्वास किया जाता है कि चन्द्रगुप्त से वैवाहिक सम्बन्ध होने के बाद इन प्रदेशों को दहेज में दिया गया था।

चन्द्रगुप्त का राजतन्त्र कौटिल्य (चाणक्य) के सिद्धान्तों पर चलता था जिसने सर्वप्रथम अर्थशास्त्र की रचना की थी जिसका दुनिया का प्रत्येक अर्थशास्त्री हर अवसर पर चर्चा करता है। कौटिल्य का दृढ़ मत था कि राजतन्त्र जनता की मन्त्रणा से सम्भव है क्योंकि एक पहिये पर कोई गाड़ी नहीं चल सकती। विभिन्न कार्यों के लिए सम्राट के परामर्श के लिए सचिव की नियुक्ति के साथ अमात्य भी बनाये जाये। कौटिल्य के अनुसार धार्मिक कसौटी से शुद्ध अमात्य को फैजदारी तथा दिवानी अदालतों का काम, धन की कसौटी पर खरा उतरने पर भंडारण-मन्त्री, प्रेम और वासना की कसौटी पर शुद्ध अमात्य को क्रीडा-केन्द्रों का निरीक्षक और भय की कसौटी पर निडर पाने पर 'आसन्न' के लिए नियुक्त करना चाहिए।

चन्द्रगुप्त ने तदानुसार शासन व्यवस्था स्थापित की हुई थी। वह पूरे राज्य का प्रधान शासक था। स्थानीय शासन के लिए एक परिषद् के पास पूर्ण उत्तरदायित्व था। न्यायिक कर्त्तव्यों को वह पूर्णरूप से निभाता था। सम्पूर्ण साम्राज्य के फैसलों के लिए मंत्रियों की एक परिषद् थी। चन्द्रगुप्त का राज्य प्रान्तों में विभाजित था। उसके द्वारा शासित प्रान्तों के अतिरिक्त कई क्षेत्र स्वशासित भी थे वहाँ लोकतांत्रिक सरकारें काम करती थीं। चन्द्रगुप्त गुप्तचर को बहुत महत्त्वपूर्ण मानता था। जहाँ विदेशियों को पूरी सुविधाएं दी जाती थी वहीं उसका गुप्तचर विभाग उनकी गतिविधियों पर ध्यान रखता था। उसके राज्य में भू-राजस्व आय का मुख्य साधन था। नगरों में बिक्री, जन्म-मृत्यु कर, अर्थ दण्ड भी वसूल किया जाता था। इस आय का बहुलांश सेना पर व्यय किया जाता था। कारीगरों और कलाकारों का गुजारा इस सरकारी कोष से चलता था। जन कल्याण के लिए सिंचाई, सड़क, गृह निर्माण, किलेबन्दी और औषधालयों की स्थापना की। चन्द्रगुप्त ने कितनी ही जल-बावलियाँ बनवाई और शिला लेख स्थापित करवाये जो इस काल में देखे जा सकते हैं। चन्द्रगुप्त ने 24 वर्ष राज किया और 300 वर्ष ईसा पूर्व देहावसान हुआ। कावेरी नदी के तट पर सेरिंगपटम् के पास लगभग 900 ई. के दो शिलालेख मिले हैं जिनके अनुसार चन्द्रगुप्त के वहाँ पहुँचने का उल्लेख है और वहीं पर उनकी मृत्यु होना बताया गया है वहाँ राज्य में अकाल पड़ने के कारण सिंहासन रिक्त करके आना हुआ था। चन्द्रगुप्त के पश्चात् साम्राज्य पर बिन्दुसार ने राज किया और उसके बाद अशोक, दि ग्रेट, आये।

**





# ब्रजलाल बियाणी

*भारत सरकार ने ब्रजलाल बियाणी के सम्मान में सर्वप्रथम 22–6–2002 को 4 रूपये की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।*

ब्रजलाला बियाणी जी का जन्म 6 दिसम्बर 1895 ई. को महाराष्ट्र प्रान्त के अकोला में स्थित हाथरून गाँव में हुआ था। उनके पिताजी का नाम नंदलाल था उनका परिवार राजस्थान से प्लायन करके यहाँ आकर बसा था। बियाणी जी की माताजी का प्लेग की महामारी में स्वर्गवास तब हो गया था जब उनकी आयु केवल दस वर्ष की थी। प्लेग की महामारी से बचाने के उद्देश्य से उसे उनकी बुआजी के घर सिरपुर (खानदेश) में भेज दिया गया। बियाणी जी के फुफाजी कृष्णभक्त थे और बहुत सा समय पूजापाठ में लगाते थे। उनकी इस दिनचर्या का बियाणी जी के ऊपर भी प्रभाव पड़ा और एक नियमित भक्त बन गये।

बियाणी जी का विवाह 14 वर्ष की आयु में सावित्री देवी से हो गया था। उन दिनों देश की स्वाधीनता के लिए आन्दोलन जोरों पर था जिसमें बियाणी जी एल. एल.बी. की द्वितीय वर्ष की शिक्षा को छोड़कर कूद पड़े। वे महात्मा गाँधी के शिष्य बन गये और जीवनपर्यन्त उनके पथ प्रदर्शन में कार्य करते रहे। उन पर जमनालाल बजाज के बाद, महात्मा गाँधी का पूर्ण विश्वास था। बियाणीजी को मारवाड़ी होते हुए भी विदर्भ केसरी कहा जाता है। इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्होंने राष्ट्र हित में कितने साहसिक कार्य किये थे। 1930 में गांधीजी के आह्वान पर विदर्भ में विदेशी वस्त्रों और शराब की दुकानों पर धरने का नेतृत्व किया। जहाँ विदर्भ में अन्य महाराष्ट्रीयन कौंसिलों में प्रवेश करके ब्रिटिश साम्राज्य के साथ सहयोग करते थे, बियाणी जी ने उनके दमन और अत्याचार का विरोध किया। देश में जब साइमन कमिशन आया तब उसका कड़ा विरोध किया और सी. पी. लैजिस्लेटिव कौंसिल में बहिष्कार का प्रस्ताव रखा। वे 15 वर्ष तक लगातार विदर्भ प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष रहे। यह दर्शाता है कि बियाणी जी में किस सीमा तक जनता का अखण्ड विश्वास था।

बियाणी जी स्वाधीनता आन्दोलन में चार बार जेल गये और लगभग 6(छः) वर्ष बिताये। 1932 के सत्याग्रह आन्दोलन के लिए उनको प्रान्तीय डिक्टेटर मनोनीत किया गया। 1940 में कांग्रेस पार्टी ने भारत देश को इसके नेताओं की बिना सहमति के महायुद्ध में शामिल हो जाने की घोषणा के विरुद्ध आन्दोलन किया था बियाणी जी को आचार्य विनोबा भावे के बाद डिक्टेटर बनाया गया। इसमें बियाणी जी को

गिरफ्तार कर लिया गया और एक वर्ष का कठोर कारावास दिया गया। बियाणीजी चाहे बाहर हो या जेल में, रचनात्मक कार्य करते रहते थे! नागपुर जेल में विनोबा जी का नियमित प्रवचन होता था बियाणी जी ने उसमें पूरा रस लिया और लिखित नोट्स लेते रहे। जिनके आधार पर पुस्तक तैयार हो गई। विनोबाजी की अनुमति से उसे 'स्वराज्य शास्त्र' के नाम से प्रकाशित करवाया। ''कल्पना कानन'' पुस्तक की रचना भी उन्होंने जेल में ही की। 'धरती और आकाश' पुस्तक में 21 कल्पना-चित्रों का संग्रह है। एक अन्य रचना 'जेल में' उनके बुद्धिवाद और तर्कवाद को दर्शाती है।

ब्रजलाल बियाणी एक मारवाड़ी वैश्य थे। विदर्भ में कई बार वर्गिय और क्षेत्रवाद के विवाद उठे। वैश्यों में कौन सा वर्ग उच्च और कौन सा वर्ग निम्न है। उनमें रूढिवादिता के प्रश्न आये दिन उठाये जाते थे। विदेश से लौटकर आने पर शुद्धिकरण से मानसिक ग्लानि समाज में व्याप्त थी। बियाणी जी एक उदार, स्पष्ट और सिद्धान्तवादी व्यक्ति थे। सभी प्रकार के विरोध के बावजूद जो प्रश्न तर्क के सामने विजयी हुआ, उन्होंने उसका ही साथ दिया। उन्होंने स्पष्ट किया कि कोलाबर और महेश्वरी वैश्य वर्ण के वर्ग है तो उनका एक दूसरे से छोटा या बड़ा होने का प्रश्न नहीं उठता। जब महाराष्ट्रियनों ने मारवाड़ी महिलाओं द्वारा आन्दोलन में भाग नहीं लेने का प्रश्न उठाया तो उन्होंने अपनी पत्नी सावित्री के साथ केवल मारवाड़ी महिलाओं को आन्दोलन में शामिल किया। ब्रिटिश शासन ने एक सहमति पत्र के द्वारा निजाम का विदर्भ पर अधिपात्य स्वीकार किया था। बियाणी जी ने उसका घोर विरोध किया ओर निजाम के झंडे का कभी अभिवादन नहीं किया। समाज में सुधार लाने के लिए 1929 में धामण गाँव में एक महासभा का आयोजन किया गया था। महिलाओं में पर्दा प्रथा का चलन था इस प्रर्थानानुसार पुरूषों की नजरों से बचाने के उद्देश्य से वहाँ एक कनात लगा दी गई थी। बियाणी जी को यह दकियानूसी व्यवस्था सहन नहीं हुई और तुरन्त अपने हाथों से उस कनात को हटाकर फेंक दिया।

ब्रजलाल बियाणी जी सच्चे गांधीवादी थे। उसमें राष्ट्रवाद कूट-कूट कर भरा हुआ था। महात्मा गाँधी के सान्निध्य में होने से उनको हिन्दी भाषा के महत्व की जानकारी मिली। बरार अहिन्दी क्षेत्र था। इस क्षेत्र में हिन्दी को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से 'नव-राजस्थान' नामक हिन्दी साप्ताहिक पत्र निकाला। वे उच्च कोटि के साहित्य के विकास में रूचि रखते थे। इसके लिए हिन्दी मासिक 'प्रवाह' की स्थापना की। इन्दौर नगर में 'विश्व-विलोक' पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन करवाया। क्योंकि बियाणी जी महाराष्ट्र प्रान्त में पैदा हुए थे इसलिए वे मराठी भाषा में निपुण थे। जब विदर्भ में मराठी भाषा का साहित्य सम्मेलन हुआ, बियाणी जी





उसके स्वागताध्यक्ष बनाये गये। इस भाषा में 'मातृभूमि' नाम से समाचार पत्र की स्थापना की।

देश ने 15 अगस्त 1947 को प्रतन्त्रता की बेडियों से मुक्ति प्राप्त की। ब्रजलाल बियाणी जी गांधीजी के सिद्धान्तों के अनुसार रचनात्मक कार्य करते रहे। वे 30 वर्ष तक अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य रहे। उन्होंने विदर्भ में 'इण्टक' की स्थापना की। जब देश के प्रदेशों का भाषा के आधार पर पुनगर्ठन हुआ, बियाणी जी ने अलग विदर्भ राज्य बनाने का प्रस्ताव रखा। जब इसे स्वीकार नहीं किया तो कांग्रेस पार्टी से कुछ समय के लिए अलग रहे। बरार चेम्बर ऑफ कामर्स की स्थापना की। राजस्थान प्रिंटिंग प्रेस के मेनेजिंग डायरेक्टर का पद सम्भाला। फैडरेशन ऑफ चैम्बर ऑफ कामर्स की कार्यकारिणी के सदस्य रहे। पुराने मध्य प्रदेश में कई वर्ष तक वित्त-मंत्री के पद पर रहे। विदर्भ प्रदेश की लम्बे समय तक विभिन्न रूप में सेवा की तो इस प्रदेश ने उससे उऋण होने के लिए 1965 के वर्ष में 70 वर्ष की आयु में ''बियाणी-ग्रन्थ'' शीर्षक से अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया। इसमें अनेक राजनेताओं, साहित्यकारों, लेखकों, पत्रकारों, औद्योगिक घरानों और समाज सेवकों ने अपने संस्मरण देकर उसका सच्चा आदर-सम्मान दिया। उनका 27-9-1968 में निधन हुआ और भारत से एक राजनायक चला गया।

**

# बाबू गुलाबराय

*भारत सरकार ने बाबू गुलाबराय के सम्मान में सर्वप्रथम 22–06–2002 को 5 रूपये की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।*

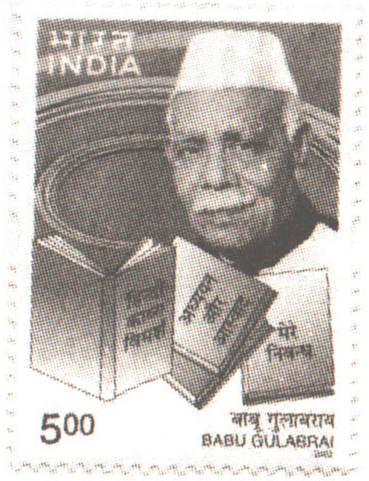


बाबू गुलाबराय का जन्म सम्वत् 1944, तदानुसार 17 जनवरी 1888 ईस्वी को उत्तर प्रदेश प्रान्त के इटावा नगर में हुआ। उनके पिताजी का नाम भवानी प्रसाद और माताजी का नाम गोमती देवी था। भवानी प्रसाद जी मैनपुरी नगर में नौकरी करते थे। गुलाबराय जब ढाई वर्ष की आयु के थे तब मैनपुरी आकर रहने लगे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा इसी नगर के मिशन हाई स्कूल में हुई। हाई स्कूल की शिक्षा के पश्चात् ऐन्ट्रेन्स की परीक्षा आगरा नगर में आकर दी। आगे की शिक्षा के लिए आगरा कालेज और सेन्ट जोन्स कालेजों में प्रवेश लिया। यहाँ रहने का निजि प्रबन्ध नहीं होने के कारण वैश्य बोर्डिंग हाऊस में ठहरे। उन दिनों शिक्षा में इतना विकास नहीं हुआ था। इसलिए विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए कुछ भारतीय प्रध्यापकों के अतिरिक्त विदेशी प्रध्यापक भी नियुक्त थे। बाबू गुलाबराय को लेखक व दार्शनिक बनाने में प्रो. जोन बगारू राजू की शिक्षा का प्रभाव रहा। उन्होंने आगरा से बी.ए. की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् 1913 ई. में प्रयाग विश्वविद्यालय से दर्शन-शास्त्र विषय लेकर एम.ए. की। 1917 में एल.एल. बी. अपने पिताजी की इच्छा पूरी करने के लिए की। वरना बाबूजी की कानून में कोई रूचि नहीं थी।

उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद, नौकरी प्राप्त करनी थी। नौकरी के प्रार्थना पत्र भेजने के लिए अखबार के विज्ञापन में जानकारियाँ लेनी आवश्यक थी। बाबू जी ने पहली नौकरी छतरपुर रियासत में प्राइवेट-सैक्रेटरी के पद की प्राप्त की थी। कुछ समय वे वहाँ मुख्य न्यायाधीश और दीवान भी रहे। इसके लिए प्रार्थना पत्र भेजने के लिए रिक्त स्थान का विज्ञापन एक अस्पताल के समाचार पत्र 'पायनियर' में देखा था। बाबूजी उस अस्पताल में डॉ. तृषार्तनाथ सिंह से मिलने गये थे। संयोगवश डॉक्टर साहब अस्पताल में भर्ती किये बीमारों को देखने के लिए गये हुए थे। समय व्यतीत करने के लिए वहाँ उपलब्ध समाचार पत्र पढ़ने लगे। तभी नौकरी का विज्ञापन सामने आया। जिसके आधार पर वे प्रार्थना-पत्र भेज पाये थे।

बाबू गुलाबराय को नौकरी की अवधि के दौरान अनेकों खट्टे-मीठे अनुभव हुए जिनका विवरण उन्होंने अपनी रचनाओं में दिया। उनके जीवन की दो घटनाओं ने न केवल उनपर व्यक्तिगत रूप में प्रभाव डाला वरन् उनका सारा परिवार ही आर्थिक रूप से प्रभावित हुआ। 1927-28 के वर्ष में उनकी धर्मपत्नी की भानजी





की शादी थी बाबूजी ने उस विवाह में शामिल होने के साथ अपने गृह नगर भी जाने का निश्चय किया। मेरठ जाने के छतरपुर से दो रास्ते थे। एक आगरा होकर और दूसरा लम्बे रास्ते कानपुर होकर पहुँच सकते थे। बाबूजी ने परिवार के सदस्यों के मनोरंजन के लिए घूमने के उद्देश्य से कानपुर के रास्ते यात्रा की योजना बनाई। नकद रकम के साथ उन्होंने पूर्व में खरीदा गया 45 (पैंतालीस) तोला सोना भी साथ लिया। कानपुर आकर परिवार के साथ आनन्दराम की धर्मशाला में रुके। शाम को परिवार के साथ कानपुर शहर देखने तांगे से गये और जब वापिस लौटकर आये तो सारा सोना और नकदी की चोरी हुई मिली। इस प्रकार की हानि से सभी को क्या अनुभव हुआ होगा। इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

दूसरी घटना, बाबू गुलाबराय के नौकरी से अवकाश प्राप्त करने के बाद हुई। उन्होंने अपने पितृस्थान जलेसर के स्थान पर आगरा आकर बसने का निश्चय किया। घरेलू सामान के साथ आगरा पहुँचकर मकान की तलाश में अनेक कठिनाइयों का सामना किया। वहीं रहते हुए स्थाई रूप से बसने के लिए निजी मकान बनाने का फैसला लिया। संयोगवश उन्होंने ऐसी जमीन खरीद ली जो बहुत नीची थी। जिसकी मिट्टी से भरवाई के पश्चात् भी आस-पास के क्षेत्र के पानी का बहाव उसी ओर था। फलस्वरूप वर्षा ऋतु में उनके मकान में पहली मंजिल की छत तक पानी भर गया था। इस परिस्थिति में उन्हें और परिवारको कितना कष्ट सहना पड़ा, यह केवल सोचा ही जा सकता है।

बाबू गुलाबराय ने अपने जीवन की सफलताओं और असफलताओं को खुले मन से स्वीकार किया है। उनके साथ, बाबूजी ने जीवन को भरपूर जिया। वे अपने मित्रों परिजनों से हास-उपहास करने में कभी पीछे नहीं रहते थे। जीवन में 1 (पहली) अप्रैल के दिन कई बार लोगों को मूर्ख बनाने में सफल हुए। लेकिन एक बार जब दिल्ली की कुतुब रोड़ पर उनको मूर्ख बनाकर ठग लिया तो उसका भी वर्णन करने से नहीं चूके। बाबू गुलाबराय में यह विशेष गुण देखने में आया। बाबू गुलाबराय ने आगरा नगर में जीवन के संघर्ष के साथ लोगों की निस्वार्थ सेवाऐं भी की। जैन बोर्डिंग हाउस के आनरेरी वार्डन का पद सम्भाला। सेंट जॉन्स कालेज में बिना कुछ अर्थाजर्न के विद्यार्थियों को हिन्दी पढ़ाई। इस नगर से प्रकाशित हिन्दी साहित्य की मासिक पत्रिका 'साहित्य संदेश' का सम्पादन किया। आगरा की 'नगरी प्रचारिणी सभा' में साहित्य रत्न और साहित्य विशारद की कक्षाओं का अवैतनिक अध्यापन कार्य किया। बाबू गुलाब राय ने इन अनेक जिम्मेदारियों के बावजूद पुस्तकों का लेखन भी किया। कुछ पुस्तकें तो 'स्वान्त सुखाय' लिखी और शेष पुस्तकों की रचना परिवार और स्वयं के जीवनयापन के लिए की। 'प्रबन्ध प्रभाकर', 'हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास' 'विज्ञान वार्ता' और 'हिन्दी नाट्य

विमर्श' उनकी विद्यार्थियों के लिए उपयोगी पुस्तकों की रचना थी जिनकी बहुत मांग रहती थी। बाबूजी की पुस्तकों में सामान्य छात्र से लेकर उच्चतर स्तर एम.ए. की कक्षाओं के अध्ययन योग्य सामग्री होती थी। उन्होंने अनेक निबन्ध लिखे। उनके ये निबन्ध आलोचनात्मक, साहित्यिक, सामाजिक, राजनैतिक और मनौवैज्ञानिक विषयों का बखूबी विवेचन और विश्लेषण करते थे। इस विद्वता का संज्ञान लेते हुए आगरा विश्वविद्यालय ने सन् 1957 को उन्हें डी. लिट् की मानद उपाधि से सम्मानित किया।

बाबू गुलाबराय ने स्वीकार किया है कि उनको लेखन कार्य में लाने वाले इटावा के मित्र सूर्यनारायण और फिरोजाबाद के सुहृदयवर प्रसाद जी का विशेष हाथ था। बाबूजी ने कोई कहानी नहीं लिखी। उनकी पहली पुस्तक 'पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास' 1912 में प्रकाशित हुई जो दर्शन शास्त्र पर महत्वपूर्ण पुस्तक थी। इसके पश्चात् इसी प्रकार की शान्तिधर्म, मैत्रीधर्म, गाँधीय मार्ग और 'मन की बातें पुस्तकों की रचना की। बाबूजी ने 1910 में लिखना आरम्भ किया और जीवन पर्यन्त 50 वर्ष तक लिखते रहे। 'ठलुआ क्लब' 1921 में लिखी गई थी जिसकी साहित्यिक जगत में बहुत प्रशंसा हुई। मुंशी प्रेमचन्द ने उसे चार्ल्स डिकिन्स के पिकनिक पेपर पर आधारित बताया। साहित्य और शिक्षा के क्षेत्रों में सेवा करते हुए बैसाख कृष्ण चतुर्थी सम्वत् 2020 तदानुसार 13 अप्रैल 1963 को उनका स्वर्गवास हुआ।

**





# आनन्द ऋषिजी

*भारत सरकार ने आनन्द ऋषिजी के सम्मान में सर्वप्रथम 9 अगस्त 2002 को 4 रूपये की 4 लाख टिकटें जारी की।*

आनन्द ऋषि जी का जन्म महाराष्ट्र प्रान्त के अहमदनगर जिले के चिंचोडी (शिराल) नामक गाँव में विक्रम स. 1957 श्रावण शुक्ल प्रतिपदा तदानुसार 25 जुलाई 1900 में हुआ। उनके पिताजी का नाम देवीचन्द और माताजी का नाम हुलसादेवी गुगलिया था उनका बचपन में 'नैमीचन्द' नाम रखा गया था। बाल्यकाल में ही उनके पिताजी का स्वर्गवास हो गया था इसका नेमीचन्द के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। वे जीवन की सार्थकता की खोज में लग गये। इस छोटी ही आयु में उनमें परिपक्वता आ गई थी वे आध्यात्म और आत्ममंथन में लगे रहने लगे। उनको वैवाहिक जीवन, पारिवारिक बन्धन और प्रतिदिन के कार्यकलापों के पीछे भाग दौड़ व्यर्थ लगती थी उनको चारों और अशान्ति-ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा अत्याचार और दमन और विश्व महायुद्ध के कारण नजर आ रही थी उसी अवधि में उनके पिताजी देवीचन्द का स्वास्थ्य तेजी से गिरने लगा इस घटना ने उसके धैर्य को हिला डाला। जब उनकी आँखों के देखते-देखते उसके पिताजी ने अपने प्राण त्याग दिये तो जीवन की इस क्षणभंगुरता ने नेमीचन्द में वैराग्य के भाव उत्पन्न कर दिये। ऐसे समय चिंचोडी में श्री रत्न ऋषि का आगमन हुआ। उन्होंने नियमित रूप से सत्संग किये और उनके प्रवचनों से बहुत ही प्रभावित हुए। उनकी अभी 13(तेरह) वर्ष की आयु थी परन्तु उनमें ग्राह्य विलक्षण बुद्धि थी। उन्होंने रत्न ऋषि से दीक्षा प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की। रत्न ऋषि उस अल्पायु बालक के प्रस्ताव पर आश्चर्य चकित थे वे तत्काल कुछ उत्तर नहीं दे सके। उन्होंने कुछ समय उनको परखने और समझने में लगाया और दीक्षा प्रदान कर दी। उनका दृढ़ संकल्प उनको इसमें सफल करने में काम आया।

रत्न ऋषि के आधीन, आनन्द ऋषि को आध्यात्मिक शिक्षा मिलती रही। उन्होंने जैन धर्मग्रन्थों के साथ-साथ संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों का भी अध्ययन किया। वे मराठी और हिन्दी भाषा तो जानते ही थे। उनके अतिरिक्त गुजराती, पंजाबी; उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में निपुणता प्राप्त की। शिक्षा ने उनमें एक नया प्रकाश उत्पन्न कर दिया था और वे शिक्षा प्रसार को महत्व देने लगे थे उन्होंने अनेक शैक्षणिक और धार्मिक संस्थाओं की स्थापना की जिनमें श्री रत्न जैन

पुस्तकालय, श्री त्रिलोक जैन विद्यालय और श्री अमोल सिद्धान्तशाला, पाथरड़ी, अहमदनगर प्रमुख हैं। पूना अस्पताल में एक-ब्लड बैंक, उनके प्रयासों से स्थापित हुआ। आनन्द ऋषि जी संगठन हेतु अपना योगदान देते रहे। उन्होंने भारतभर में पैदल भ्रमण किया। श्रमणसंघ को शक्तिशाली बनाया। उनकी वाणी में अद्‌भुत मिठास था वे अपने प्रवचनों में अन्धविश्वास और रूढ़िता पर खुलकर व्याख्यान देते थे। उनके सान्निध्य में आने वाला उनका परमभक्त बन जाता था वे परोपकार और जनकल्याणकारी कार्यों के लिए प्रेरणा देते थे। उनको 1965 में आचार्य की उपाधि प्राप्त हुई।

आनन्द ऋषि महाराज के आगमन की नगरों, कस्बों और गांवों में प्रतीक्षा होती रहती थी। जब उनका 28 मार्च 1992 में स्वर्गवास हुआ वे अहमदनगर में ही थे। मानव श्रेष्ठ मुनि के उपदेश लोगों में आज भी चर्चा का विषय है।

**





## नरेन्द्र मोहन

*भारत सरकार ने नरेन्द्र मोहन जी के सम्मान में सर्वप्रथम 14 अक्टूबर 2003 को 5 रुपये की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।*

नरेन्द्र मोहन जी का जन्म 10 अक्टूबर 1934 को उत्तर प्रदेश प्रान्त के जिला जालौन के काल्पी गाँव में हुआ। उनके पिताजी का नाम पूर्णचन्द्र गुप्त और माताजी का नाम श्रीमति लक्ष्मी देवी था। परिवार में पांच भाई और दो बहनें थीं। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के बाद उन्होंने 1954 में बी.काम की परीक्षा बी. एस.एस.डी. कॉलेज, कानुपर से उत्तीर्ण की। इसी नगर में परिवार आकर रहने लगा जहाँ पूर्णचन्द्र गुप्त जी ने 1947 में एक हिन्दी समाचार पत्र 'दैनिक जागरण' का प्रकाशन आरम्भ किया था। नरेन्द्र मोहन ने 1956 में इसी नगर के डी.ए.वी. कालेज से एम. काम. की उपाधि प्राप्त की और अपने पिताजी के समाचार पत्र का भार सम्भालने के उद्देश्य से 1962 में पत्रकारिता प्रशिक्षण के लिए अमेरिका गये। इससे पूर्व, नरेन्द्र-मोहन जी सांस्कृतिक कार्यक्रमों और उनसे सम्बन्धित आयोजनों में रुचि लेने लगे थे। 1960 में रोटरी गर्वनर डॉ. सीताराम जयपुरिया के साथ रोटरी सम्मेलन में भाग लेने के लिए पाकिस्तान की यात्रा की। 7 नवम्बर से 18 नवम्बर 1960 तक दिल्ली में इंटरनेशनल प्रेस इंस्टीट्यूट, जूरिख, स्विटजरलैंड द्वारा आयोजित सेमिनार में भाग लिया और प्रमाण पत्र प्राप्त किया।

अमेरिका से पत्रकारिता का प्रशिक्षण प्राप्त करके लौटकर 1965 में अपने पिताजी से ''दैनिक जागरण'' समाचार पत्र के संपादन का उत्तरदायित्व सम्भाला। यह सम्पादन का वह काल था जब अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी रहन-सहन को लोग उच्चता और प्रमुखता देते थे। इस कारण से अंग्रेजी समाचार पत्रों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इस दौर में हिन्दी भाषा में प्रकाशित दैनिक जागरण की उन्नति और उसका विकास एक चुनौति थी। नरेन्द्र मोहन धरती से जुड़े हुए युवक थे। उनका मानना था कि किसी समाचार-पत्र की मुख्य भूमिका जन-सामान्य की आवाज को बुलंद करना है। उनकी समस्याओं, उनके प्रतिदिन के संघर्ष का ब्यौरा प्रशासन और शासन तक पहुँचाना उसका पहला कर्त्तव्य है। इसके लिए जनसामान्य की भाषा हिन्दी ही समर्थ हो सकती है। इस उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए नरेन्द्र मोहन ने समाचार पत्र की नीति और उसमें प्रकाशित स्तम्भों और सामग्रियों में परिवर्तन किये। स्वयं सम्पादकीय स्तम्भ के साथ ''विचार प्रवाह' नया स्तम्भ लिखने लगे। इन नये प्रयोगों का प्रभाव यह हुआ कि यह पत्र साधारण जनता का मुख-पत्र बन गया। कानपुर नगर देश की राजधानी दिल्ली से सैकड़ों किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस समाचार पत्र का प्रभाव उस नगर और उत्तर प्रदेश की राजनीति पर होना चाहिए था। परन्तु उत्तर प्रदेश देश का वह प्रान्त है जिसके लोक-सभा में अन्य प्रान्तों की तुलना में सर्वाधिक सदस्य होते हैं। इससे केन्द्र में किस राजनैतिक पार्टी की सरकार हो, इसमें उन सदस्यों का संगठन मुख्य भूमिका निभाने की स्थिति में होता है। इस परिस्थिति में उस प्रदेश का समाचार-पत्र जन-सामानय में कोई विचार-प्रवाह और उनका सम्पादक उचित दिशा निर्देश देने में समर्थ होता है। नरेन्द्र-मोहन ने

जन-सामान्य की नब्ज जाँच ली थी और उसी प्रकार के विचार और दिशा-निर्देश जागरण दैनिक में प्रकाशित होने लगे। इससे यह जन-प्रिय हो गया और इसकी प्रतियों की मांग लाखों में हो गई। समाचार पत्र की लोक प्रियता दूसरे शब्दों में सम्पादक की लोकप्रियता होती है। दूसरे राजनैतिक क्षेत्रों में नरेन्द्र मोहन का महत्त्व बढ़ता चला गया। केन्द्र सरकार में प्रधानमंत्री उनको अनदेखा नहीं कर सकते थे। उसमें दी गई आलोचना को गम्भीर रूप में लिया जाता था। यही कारण था कि नरेन्द्र मोहन जी को प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने 1985 में अमेरिका, इजिप्ट, काहिरा, फ्रांस, अल्जीरिया, 1986 में जाम्बिया, जिम्बाम्बे, अंगोला व तन्जानिया, 1987 में मास्को, श्रीलंका, अमेरिका, कनाडा की अपनी सरकारी विदेश यात्राओं में अपने डेलिगेटों में शामिल किया। तत्पश्चात् विश्वप्रताप सिंह जब प्रधानमंत्री बने तब वे उनको 1990 में नामीबिया और रूस, अपने साथ लेकर गये। प्रधानमंत्री नरसिम्हन राव ने भी नरेन्द्र मोहन के महत्त्व को कम करके नहीं जांचा। वे नरेन्द्र मोहन को 1992 में अमेरिका व स्विटरलैंड, 1993 में चीन तथा कोरिया, 1994 में पुनः अमेरिका 1995 में इंग्लैंड, अपनी सरकारी यात्राओं में साथ लेकर गये। इस प्रकार नरेन्द्र मोहन ने अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का विस्तृत ज्ञान अर्जित किया। उन देशों की शासन प्रणाली, राज-व्यवस्था और अर्थव्यवस्था की उनको पूर्ण जानकारी थी। नरेन्द्र मोहन ने उपरोक्त राजकीय डेलीगेशनों के अतिरिक्त व्यक्तिगत रूप से भी विदेश यात्राएं की।

नरेन्द्र मोहन ने पत्रकारिता में निपुणता और कुशलता से दैनिक जागरण को प्रगति प्रदान की, वहीं सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक और शैक्षिक कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लिया। अनेक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लिया। मोरिशस में 'अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग परिषद्' में और जापान में 'बौद्ध सम्मेलन' में भाग लेने गये।·सामाजिक कार्यों में विशिष्ट स्थान प्राप्त था उनके परामर्श और दिशा-निर्देशों को गम्भीरता से लिया जाता था। 2001 के वर्ष 10 अप्रैल को आयोजित 'अखिल भारतीय वैश्व सम्मेलन में उनको मुख्य अतिथि बनाया गया। नरेन्द्र मोहन जी ने इस प्रकार के अनेक आयोजनों में भाग लिया। आयोजकों और संस्थाओं ने उनकी सेवाओं की अनदेखी नहीं की। उनको लगभग डेढ दर्जन पुरस्कार, स्मृति चिन्ह, प्रशस्ति पत्र और सम्मान दिये। उनमें 'यू.पी. रत्न', 'संस्कृत पुरस्कार' 'ज्ञानभारती' पुरस्कार 'वैश्यरत्न सम्मान' 'राष्ट्र गौरव' की उपाधि, 'मातृश्री' और सीता' सम्मान प्रमुख है। उनकी साहित्यिक कृतियों में ''अमृत की ओर', 'खोलो द्वार', 'तुम्हारा संगीत', 'दासत्व से उबरो', 'सत्य की धूम' 'धर्म और साम्प्रदायिकता' 'प्रतिरक्षा और सामरिक नीति' 'आज की राजनीति' और 'भ्रष्टाचार' हैं।

नरेन्द्र मोहन उपरोक्त रुचियों के कारण अनेक संस्थाओं से जुड़कर रहे जिनमें रोटरी कल्ब, 'हिमालयन इण्टरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ योग, साइंस एण्ड फिलासफी, उ. प्र. संगीत नाटक अकादमी, पी.टी.आई., हिन्दी भवन, बैंक ऑफ राजस्थान कुछ के नाम दिये जा सकते हैं। भाजपा से राज्य सभा के सदस्य बनाये गये। इससे उनको कई समितियों में नामित किया गया। आपत्-काल में सरकार के विरूद्ध लिखने के कारण उनको गिरफ्तार किया गया था। ऐसे निर्भीक, स्पष्टवादी, उच्च विचार, योग्य महापुरुष का देहान्त 28 सितम्बर, 2002 को हुआ। अब दैनिक जागरण का पद-भार उनके भाई योगेन्द्र मोहन गुप्ता सम्भाले हुए हैं।

**





# डॉ. इन्द्रचन्द्र शास्त्री

*भारत सरकार ने डॉ. इन्द्रचन्द्र शास्त्री के सम्मान में सर्वप्रथम 27 मई 2004 को 5 रूपये की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।*

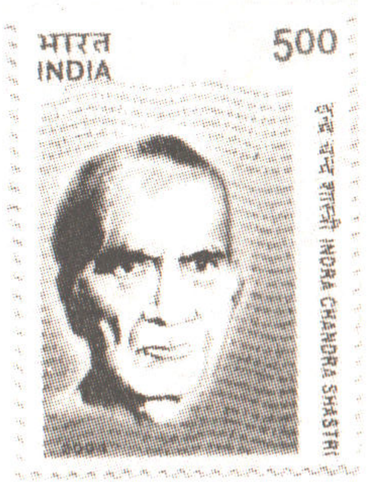


डॉ. इन्द्रचन्द्र शास्त्री का जन्म 27 मई 1912 को हरियाणा प्रान्त के सिरसा जिले के डबवाली मंडी के अग्रवाल (सिंहल) परिवार में हुआ। उनके पिता जी का नाम श्री बीरबलदास और माता जी का श्रीमती रतिदेवी था। डॉ. इन्द्र चन्द्र शास्त्री शिक्षा ग्रहण करने के लिए बीका।नेर चले आए जहां उन्होंने संस्कृत और प्राकृत का अध्ययन किया। बाद में उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से संस्कृत में स्नातकोत्तर और बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से वेदांत में 'शास्त्राचार्य' की। उन्होंनें पंजाब विश्वविद्यालय से 'शास्त्री' और कलकत्ता से 'न्यायतीर्थ की उपाधि प्राप्त की। पंडित बाल कृष्ण मिश्र के मार्ग दर्शन में उन्होंने पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। ''एपिस्टेमॉलाजी ऑफ जैन अगम्स'' पर उनके शोध निबंध की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई।

शास्त्रीजी महात्मा गाँधी से काफी प्रभावित थे और उन्होंनें स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। 1942 में उन्होंने बाल दीक्षा के खिलाफ अभियान चलाया। उस समय प्रचलित इस प्रथा के अंतर्गत जैन साधु राजस्थान में गरीब बच्चों को बलात् गोद ले लेते थे। इस अभियान के फलस्वरूप बीकानेर विधान सभा में एक विधेयक प्रस्तुत हुआ। विभाजन के दौरान उन्होंने सहायता शिविर भी लगाए। वे संगठनात्मक गतिविधियों में भी शामिल थे। 1954-58 तक वे अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन के सचिव रहे । 1957 में उन्होंने ऑल इंडिया आरियंटल कॉन्फ्रेंस के दिल्ली सत्र का भी आयोजन किया। उज्जैन, राजगीर और दिल्ली के विश्व धर्म सम्मेलन में वे मुख्य वक्ता रहे। 1959 में वे दिल्ली विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर अध्ययन संस्थान में संस्कृत के पहले विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए। ग्लूकोमा के चलते दृष्टि चले जाने के कारण 1961 में उन्होने इस पद से त्यागपत्र दे दिया। तत्पश्चात् विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की एक योजना के अंतर्गत वे प्रोफेसर एमेरिटस नियुक्त हुए और 1967-69 के दौरान उन्होंने 'धर्म और आधुनिक मनुष्य' पर शोध किया। आमंत्रित वक्ता के रूप में वे अनेक विभागों से संबद्ध रहे।

उनके लेखन पर विद्वता की गहरी छाप है। उन्होंने लगभग 70 पुस्तके और 600 शोध पत्र लिखें, जिनमें उन्होंने ग्रंथों के ज्ञान का सार निकालकर उसे आधुनिक परिवेश में लागू किया। उनकी 'पालि भाषा और साहित्य' में तीन प्रस्तावनाओं की श्रृंखला है, जिसके बाद विलहेम गाइगर लिखित प्रसिद्ध जर्मन कृति 'पालि लिट्राटर

अंद स्प्राशे' की भूमिका का हिन्दी अनुवाद है। डॉ. शास्त्री ने शताब्दियों से प्रचलित चिंतन धाराओं का तटस्थ आलोचनात्मक विश्लेषण किया। मृतप्राय मान्यताओं को तोड़ने के लिए तर्क को आवश्यक साधन मानते हुए भी, उन्होंने मौलिक चिंतन संरचना की विरासत को अपनाया। उनमें एक अन्वेष्क और सुधारक का अविरल उत्साह था। इसके प्रमाण उनकी कृतियों में संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, महाभारत के सूक्ति रत्न, आलोक और उन्माद, हमारी परंपरा, जैनिज्म एंड डेमोक्रेसी, धर्म और राष्ट्र निमार्ण, भारतीय आर्य भाषाएं आदि शामिल हैं।

उनके अग्रगामी प्रयासों और सृजनात्मका प्रतिभा के सम्मान में हिन्दी अकादमी ने उन्हें 'साहित्य सेवा सम्मान' प्रदान किया। दिल्ली विश्वविद्यालय के उप-कुलपति द्वारा उन्हें 'साहित्य रत्न अलंकरण' सम्मान भी प्रदान किया गया। भारत के राष्ट्रपति ने 15 अगस्त 1986 को उन्हें 'सम्मान प्रशस्ति-पत्र' प्रदान किया। जिस क्षेत्र में डॉ. इन्द्र चन्द्र शास्त्री का निवास स्थान था उसे चिरस्थायी बनाने के लिए शक्तिनगर के नागिया पार्क से विश्वविद्यालय तक की सड़क का नाम 'इन्द्रचन्द्र शास्त्री मार्ग' रखा है।

डॉ. सतकरी मुखर्जी के अनुसार 'एपिस्टेमॉलॉजी ऑफ जैन अगम्स' जो एक तुलनात्मक अध्ययन है, में ''रूढ़िवादिता और वास्तविकता और इन दोनों की सहमति और असहमति के मुद्दों का जिस परिपक्वता से आकलन किया गया है, वह निश्चय ही लेखक को अंग्रेजी भाषा में जैन धर्म अध्ययन के अग्रणी व्याख्याकार की ख्याति प्रदान करेगा। इस अध्ययन में एक स्वस्थ दृष्टिकोण और हठधर्मिता से मुक्ति की झलक मिलती है।'' दृष्टि चले जाने के बावजूद उनके विपुल उद्‌गारो का प्रवाह नही थमा और वे श्रुतलेख के माध्यम से अपने भावों और विचारों को महान कृतियों का रूप देने लगे।

साहस और समर्पण की इस प्रतिमूर्ति का 3 नवंबर 1986 को निधन हो गया। डॉ. इन्द्र चन्द्र शास्त्री मनुष्य के व्यक्तिगत से वैश्विक और मानवतावादी होने तक की आध्यात्मिक यात्रा के हिमायती थे। उनके जीवन का सफर का तीर्थाटन था, जिसे हम सभी सादर स्मरण और हृदय में ग्रहण करते हैं।

**





# ज्योतिप्रसाद अगरवाला

*भारत सरकार ने ज्योतिप्रसाद अगरवाला के सम्मान में सर्वप्रथम 17–6–2004 को 5 रुपये की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।*

ज्योतिप्रसाद अगरवाला का जन्म 17 जून, 1903 को परमानन्द अगरवाला और किरणमयी देवी के घर हुआ। उन्होंने डिब्रूगढ़ के तेजपुर हाई स्कूल में प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। 1921 में गांधी जी के तेजपुर आगमन पर श्री अगरवाला उनसे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने स्कूल छोड़ दिया। बाद में उन्होंने चित्तरंजन दास विश्वविद्यालय और नेशनल कॉलेज कलकत्ता से अपनी शिक्षा पूरी की। उनके युवा हृदय में देशभक्ति के प्रति प्रज्ज्वलित लौ राष्ट्रवाद की आजीवन ज्वाला में परिवर्तित हो गई। 1930 के दशक में ज्योतिप्रसाद अगरवाला एक सक्रिय सत्याग्रही बन गए और तेजपुर के ग्रामीण क्षेत्रों का व्यापक दौरा किया। उन्होंने राष्ट्रभक्ति के अनेक गीत लिखे जिन्होंने नौजवानों को प्रेरित किया। ब्रिटिश शासन ने 1932 में उन्हें उनकी गतिविधियों से भयभीत होकर गिरफ्तार कर लिया और उन पर 500/- रु. का जुर्माना ठोक दिया गया। इस उथल-पुथल के दौर में उन्होंने डिब्रूगढ़ निवासी देवजानी भूयान से विवाह किया। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान स्वयंसेवक बल के कमांडर के रूप में ज्योतिप्रसाद भूमिगत होकर क्रांति का संदेश फैलाते रहे। वे हमेशा शांति के उपासक रहे और गांधीजी के परामर्श पर 15 अगस्त, 1943 को दारांग जिला न्यायालय में उन्होंने स्वयं को अंग्रेजों के हवाले कर दिया। उन पर मुकदमा चला, परन्तु सबूतों के अभाव में उन्हें रिहा कर दिया गया।

ज्योति प्रसाद अगरवाला ने 14 वर्ष की आयु में ही ''शोणित कुंवारी'' की रचना की थी। यह अभिनव प्रयोगों से युक्त एक संगीतात्मक नृत्य-नाटिका थी। इसमें निहित पद्‌मकलि नृत्य 'बीहू' और 'भावना' का संयुक्त रूप है। 1924 में बने रंगशाला में इस नृत्य-नाटिका का पहली बार मंचन किया गया और यह असमिया नाटक के इतिहास में मील का पत्थर बन गया। उनकी अन्य रचनाएं थीं-कारिंगारलीगिरि, रुपालिम, लाभिता और निमति कन्या।

वे एक मंजे हुए कवि थे और उनकी अलंकृत भाषा विशुद्ध और मृदुल असमिया शब्दों से सुसज्जित थी। उन्होंने 'ज्योति रामायण' की भी रचना की, जिसे बाल साहित्य के लिए उनका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान माना जाता है।

उन्होंने 'ज्योति संगीत' की भी शुरुआत की, जो असमिया, हिन्दुस्तानी और पाश्चात्य संगीत की सम्मिश्रण है।

ज्योति प्रसाद अगरवाला 1926 में विदेश गये और 1927 में एडिनवर्ग विश्वविद्यालय में अध्ययन के लिए प्रवेश लिया। वे संगीत और नाट्य संसार की तत्कालीन प्रायोगिक प्रवृत्तियों और सिनेमा के उत्तरोत्तर विकास से प्रभावित हुए। 1929 में उन्होंने बर्लिन में सिनेमेटोग्राफी का अध्ययन किया।

भारत लौटने पर उन्होंनें ''जॉयमति'' नामक फिल्म बनाई। यह असम की पहली फिल्म थी और मूक फिल्मों के दौर में एक बोलती फिल्म भी। यह फिल्म 10 मार्च, 1935 को रिलीज हुई और इंसने असम के सिनेमा इतिहास में नया अध्याय जोड़ा। सिनेमाई तकनीक के स्तर पर यह फिल्म अपने समय से काफी आगे की फिल्म थी जो यथार्थवादी और सूक्ष्म अदाकरी से सजी थी। उनकी अगली फिल्म 'इन्द्रमालती' थी। उन्होंने प्रथम फिल्म स्टूडियो 'चित्रबन', प्रथम थियेटर 'जोनाकी' और 'तेजपुर संगीत महाविद्यालय' की भी स्थापना की। उन्होंने प्रख्यात साहित्यकार श्री बिष्णु प्रसाद राभा के साथ अपने नाटकों का पहला ग्रामोफोन रिकॉर्ड भी तैयार किया।

ज्योतिप्रसाद अगरवाला ने अपना संपूर्ण जीवन असमिया समाज को नवजीवन प्रदान करने के प्रति समर्पित किया। असम के जातीय समुदायों की एकता की धारा उन्हीं के साहित्यिक सरोवर से फूटती है। उनका मानना था कि जनसाधारण की सशक्तता से ही सांस्कृतिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त होता है। उन्होंने असमिया को असम की राजभाषा बनाने के लिए संघर्ष किया। गुवाहाटी विश्वविद्यालय उनके निःस्वार्थ और अथक प्रयासों का ही एक उदाहरण है।

असमिया साहित्य, संगीत और संस्कृति के प्रति उनके योगदान के लिए उन्हें सस्नेह 'रूपकुंवर' अर्थात् सौंदर्य का राजकुमार भी कहा जाता है।

ज्योतिप्रसाद अगरवाला का 17 जनवरी, 1951 को निधन हो गया। इस दिन को असम में 'शिल्पी दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

**





# आचार्य भिक्षु

*भारत सरकार ने आचार्य भिक्षु के सम्मान में सर्वप्रथम 30 जून 2004 को 5 रुपये की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।*

आचार्य भिक्षु का जन्म विक्रम संवत् 1783 (सन् 1926) आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी को राजस्थान के पाली जिले में कंटालिया ग्राम में शाह बल्लूजी सकलेचा और दीपांजी के घर हुआ। उनका विवाह पड़ोस के गांव की सुगणीबाई से हुआ था लेकिन अपने पिता और पत्नी के अल्पावधि में ही आकस्मिक देहांत हो जाने के कारण उन्होंने आचार्य रघुनाथ जी के मार्गदर्शन में संन्यास ग्रहण कर लिया। वे पारंपरिक रूढ़िवादियों, मिथ्या धारणाओं और अंधविश्वास के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए बगड़ी गांव से प्रस्थान कर गए और राजस्थान के मेवाड़ के केलबा जा पहुंचे। वहाँ उन्होंने व्रत धारण किया और 28 जून, 1760 को तेरापंथ धार्मिक संघ की स्थापना की।

वे जैन धर्म के श्वेतांबर तेरापंथ सम्प्रदाय के संस्थापक एवं क्रांतिकारी विचारधारा के महापुरुष थे उन्होंने प्राचीन ग्रन्थों के गूढ़ अध्ययन के उपरांत जब यह समझ लिया कि लोग इनकी गलत व्याख्या करते हैं तथा सामज में इनके विकृत रूप ही प्रचलित हैं तब वे इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने को प्रेरित हुए।

आचार्य भिक्षु एक दार्शनिक संत, अनुभूतिक्षम लेखक, संवेदनशील कवि और समाज सुधारक थे। उन्होंने लगभग 38000 श्लोकों की रचना की और उनकी रचनाएं ''भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर'' नाम से दो भागों में संग्रहीत हैं। उनकी रचनाओं में ''नव पदार्थ सद्भाव'' को एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक ग्रन्थ माना जाता है जिसमें जैन दर्शन के नव रत्नों का समग्र प्रतिपादन है। यह एक शोषण मुक्त समाज का समर्थन करता है।

आचार्य भिक्षु धार्मिक क्रांति के अग्रदूत थे। उन्होंने समाज को अनेक बुराइयों से मुक्त करने के लिए काफी परिश्रम किया। आचार्य भिक्षु के विचारों से लोग राजनीति, समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र के क्षेत्रों में लाभप्रद मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने ध्येय की प्राप्ति के लिए साधन की पवित्रता होने की भरपूर हिमायत की। उन्होंने कहा कि दण्ड के भय और पुरस्कार के प्रलोभन से धर्म कार्य को निष्पादित नहीं किया जा सकता। इसके लिए हृदय परिवर्तन अनिवार्य है। उनका विश्वास था कि आवश्यकतावश की गई हिंसा भी हिंसा ही है और बड़ों के लाभ के लिए छोटों का दमन करना उन्हें स्वीकार्य नहीं था। उन्होंने संसार को धर्म और समाज की विभिन्न भूमिकाओं का ज्ञान दिया। उन्होंने कहा कि जहाँ कहीं भी भलाई और सच्चाई है वह

जाति, पंथ अथवा स्थान के भेद-भाव को ध्यान में न रखते हुए समाज कल्याण के लिए हितकर होगा। पीड़ित, शोषित और असहाय लोगों को दी गई सहायता को उन्होंने कर्तव्य, उत्तरदायित्व और सामाजिक बाध्यता से जोड़कर समाज में क्रांति का आह्वान किया।

आचार्य भिक्षु ने विक्रम संवत् 1860 (सन् 1803) में राजस्थान के सिरियारी में निर्वाण प्राप्त किया। तथापि, संघ के 10वें आचार्य, आचार्य महाप्रज्ञ ने उनके सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार किया जिनकी ''जीवन विज्ञान'' नामक रचना में ध्यान प्रणाली पर महत्त्वपूर्ण रूप से प्रकाश डाला गया है। वे 'प्रेक्षा ध्यान' को पुनरुज्जीवित करने के लिए गहन ध्यान में मग्न हो गए जो तनाव, व्यसन जैसी अनेक समस्याओं तथा अन्य भावात्मक, मानसिक एवं शारीरिक समस्याओं के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ है। वर्तमान तेरापंथ दर्शन मानवतावादी, धर्मनिरपेक्ष एवं शांति पर आधारित आचार्य भिक्षु के आदर्शों को प्रोत्साहित एवं प्रसारित करता है।

**





# वालचंद हिराचंद

*भारत सरकार ने वालचंद हिराचंद के सम्मान में सर्वप्रथम 23 नवम्बर 2004 को 5 रूपये की 7 लाख डाक टिकटे जारी की।*

वालचंद का जन्म 23 नवम्बर 1882 को महाराष्ट्र प्रान्त के शोलापुर नगर में हुआ। उनके पिता जी का नाम हिराचंद और माता जी का नाम राजूबाई था जिनका वालचंद के जन्म होने के पन्द्रह दिन में ही देहान्त हो गया। इस दुख की घड़ी में उनकी चाची उमाबाई ने उनका पालन-पोषण किया और उन्हें मां की कमी का अहसास नहीं होने दिया। उनके पिता हिराचंद ने यह सुनिश्चित किया कि वालचंद की दिनचर्या अनुशासन, सत्यनिष्ठा और नित्यता से युक्त हो। यद्यपि भगवान महावीर के अधिकांश उपदेश अर्धमागधी में थे फिर भी यह सुनिश्चित करने के लिए कि भगवान के संस्कृत में लिखे उपदेशों से बालक वंचित न रह जाए, हिराचंद ने अपने पुत्र से कुछ चुनिंदा खण्डों को कंठस्थ कराया जिनकी व्याख्या उन्होंने स्वयं अथवा स्वयं किसी विद्वान से कराई थी। वालचंद ने अपनी शिक्षा राजकीय हाईस्कूल, शोलापुर, सेंट जेवियर कॉलेज, धोबी तालाब और दक्कन कॉलेज, पुणे में प्राप्त की।

20 वीं शताब्दी के प्रारंम्भिक काल पर दादाभाई नौरोजी, न्यायमूर्ति एम.जी. रानाडे, जी.वी.जोशी और आर.सी.दत्त जैसे मूर्धन्य व्यक्तियों के अथक प्रयासों की छाप है। इन्होंने भारत की गरीबी का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया और उपनिवेशी शासकों की इकतरफा नीति का पर्दाफाश किया जिसके द्वारा भारतीयों को ऐसे आधुनिक यांत्रिकी ज्ञान से वंचित रखना था जिसकी मदद से भारत ब्रिटिश माल का बाजार बनने के स्थान पर स्वयं कच्चे माल को तैयार माल में बदलकर विश्व बाजार में उतर सकता था। इन देशभक्तों के प्रयासों ने वालचंद पर गहरा प्रभाव डाला। उन्होंने अपने देश से गरीबी और आर्थिक गुलामी को मिटाने के प्रति अपने जीवन को समर्पित करने का संकल्प लिया। उसी दिन से उनके विचारों और कर्मों का एकमात्र लक्ष्य अपने देश का औद्योगिकीकरण करना बन गया।

शोलापुर में ज्वार और इसके बाद कपास के व्यापार में असफल होने पर वालचंद ने अपने निजी अनुभवों से यह सीख ली कि ठेके पर व्यापार करना ही लाभप्रद होगा। अपने पिता और चाचा के विरोध के बावजूद, उन्होंने एक भूतपूर्व रेलवे लिपिक लक्ष्मण बलवंत पाठक (1874-1935) के साथ साझेदारी की और बारसी लाइट रेलवे नामक रेलवे लाइन के निर्माण का ठेका प्राप्त किया जो सफल रहा। उसके बाद वालचंद आगे बढ़ते गए और उन्होंने अनेक उद्योगों की स्थापना

की तथा देश के आधारभूत परिवहन साधनों की नींव रखी।

उनका अगला लक्ष्य लोगों को जोड़ने के लिए पुलों का निर्माण करना था। वालचंद ने महाराष्ट्र में भोरघाट सुरंग को सफलतापूर्वक पूरा किया जिसे उस समय किसी भारतीय कंपनी की क्षमताओं से परे का काम समझा जाता था। कुछेक वर्षो में, हिन्दुस्तान कनस्ट्रक्शन कंपनी (एचसीसी) बनी जिसने कुछ विशेष निर्माण परियोजनाओं को अंजाम दिया। अपनी विदेश यात्राओं के दौरान एक बार वालचंद एक अमरिकी हवाई जहाज कंपनी के अध्यक्ष से मिले, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने भारत में हवाई जहाज निर्मित करने का निश्चय किया। उन्होंनें निर्धारित समय से पूर्व ही हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट लिमिटेड (एचएएल) की स्थापना का कार्य पूरा किया और एचएएल द्वारा निर्मित प्रथम प्रशिक्षण हवाई जहाज 'हार्लो' ने जुलाई 1941 में उड़ान भरी । तदनंतर, भारत सरकार ने एचएएल का अधिग्रहण कर लिया और उसके बाद से एचएएल हवाई जहाजों का निर्माण तथा भारतीय वायुसीमा की सुरक्षा करता आ रहा है। वालचंद ने जल और सड़क परिवहन में भी अपनी पहचान बनाई। उनकी सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कंपनी के पास 54 स्टीमरों का बेड़ा था जो उस समय की सबसे बड़ी जल परिवहन कंपनी थी। इसी प्रकार प्रीमियर ऑटोमोबाइल्स लि. ने 1947 में पहली बार स्वदेश निर्मित कारों और ट्रकों को चलाया।

वालचंद ने महसूस किया कि जब तक खेती को आधुनिकीकृत तथा लाभकारी नहीं बनाया जाता तब तक भारत के लाखों गरीबों की समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सकेगा। उन्होंने गन्ने पर अपना ध्यान केंद्रित किया और तत्पश्चात् रावलगांव शुगर फार्म लिमिटेड की स्थापना की। बेहतर चीनी प्रोसेसिंग प्रौद्योगिकी के द्वारा उन्होंने ऐसी चीनी का उत्पादन किया जो अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप थी। व्यापार में उतार-चढ़ाव आने के बावजूद, वालचंद ने अपने कर्मचारियों और समुदाय के हित और कल्याण का मुख्य रूप से ध्यान रखा। उन्होंने अनेक शैक्षणिक और व्यापारिक संस्थानों की स्थापना की जैसे महाराष्ट्र के सांगली में वालचंद कॉलेज ऑफ इंजीनीयनिंग, द इंडिया मर्चेंट चैंबर्स, महाराष्ट्र चैंबर ऑफ कॉमर्स, फेडरेशन ऑफ इंडियन चैंबर्स ऑफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्रीज आदि। भारतीय उद्योग और इसके बुनियादी ढांचे पर अपनी अमिट छाप छोड़कर 8 अप्रैल, 1953 को श्री वालचंद हिराचंद परलोक सिधार गए। उनके जीवन का ध्येय भारत को आर्थिक बंधनों से मुक्त करना और यह सिद्ध करना था कि अवसर दिए जाएं तो भारत में वह क्षमता और योग्यता है कि वह कभी किसी से पीछे नहीं रहेगा।

**





# पद्मपत सिंहानिया

*भारत सरकार ने पद्मपत सिहांनिया के सम्मान मे सर्वप्रथम 3 पफरवरी 2005 को 5 रूपये की 6 लाख डाक टिकटें जारी की।*

राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत पद्मपत सिंहानिया भारत के अग्रगामी उद्योगपतियों में से एक थे। उनका विश्वास था कि सच्ची आजादी का रास्ता औद्योगिक स्वतंत्रता से ही निकलता है। वे जे.के संगठन के प्रमुख और स्वभाव से परोपकारी थे।

3 फरवरी 1905 को सेठ कमलापत सिंहानिया और श्रीमती रामप्यारी के घर जन्मे पद्मपत सिंहानिया ने संविधान सभा के सदस्य और संविधान के हस्ताक्षरकर्ता के रूप में भारत के सांविधानिक इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

पद्मपत सिंहानिया ने किसी भी स्कूल में कोई औपचारिक शैक्षणिक योग्यता हासिल नहीं की । जिंदगी के सबक उन्होंने शैक्षणिक संस्थानों के बाहर ही सीखे।

किशोरावस्था में ही पद्मपत सिंहानिया ने अदभुत् परिपक्वता और व्यवसाय की गहरी समझ का प्रदर्शन किया। वे जब केवल 16 वर्ष के थे, तब उन्होंने नवस्थापित जे.के. कॉटन स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स में स्वदेशी आंदोलन की सच्ची भावना के अनुरूप प्रमुख जिम्मेदारी संभालनी शुरू की। उन्होंने अपने पिता की मृत्यु के बाद कारोबार को अत्यंत कुशलता से चलाया। पद्मपत सिंहानिया दृढ़ राष्ट्रवादी भावनाओं वाले व्यक्ति थे। 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के चरम सीमा पर होने के दौरान महमना मदन मोहन मालवीय और श्री बालकृष्ण शर्मा सरीखे प्रमुख स्वतंत्रता सेनानियों ने फंड के लिए उनसे संपर्क किया। वे एक गुप्त कार्रवाई को अंजाम देने में भी शामिल थे।

ब्रिटिश हुकूमत ने यद्यपि 1943 में उन्हें नाइट की उपाधि प्रदान की, पर उन्होंने खुले दिल से वित्तीय मदद देकर स्वदेशी आंदोलन और स्वतंत्रता संग्राम को समर्थन जारी रखा।

अपने विशाल औद्योगिक साम्राज्य के माध्यम से पद्मपत सिंहानिया ने स्वातंत्र्योत्तर युग में भारतीय औद्योगिक परिदृश्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। आज देश और विदेश में 70 इकाइयां हैं, जिनमें पारंपरिक उत्पादों से लेकर सूती वस्त्र, जूट के वस्त्र, ऊनी वस्त्र, रेयॉन, नायलॉन, लौह व स्टील, सीमेंट, शिपिंग, वायु परिवहन आदि उद्योग शामिल हैं। उन्हें कानपुर विश्वविद्यालय द्वारा 1969 में ''डी लिट'' की (मानद उपाधि) प्रदान की गई।

उनकी सादगी और मानवता की सेवा के प्रति समर्पण भाव की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। उनका पूरा कैरियर अपने देशवासियों की सेवा में समर्पित रहा। पद्मपत सिंहानिया ने विभिन्न सार्वजनिक निकायों के संवर्द्धन और उत्थान में सक्रिय भूमिका निभाई। वे मर्चेंट्स चेंबर आफॅ उत्तर प्रदेश, कानपुर के संस्थापक भी थे। वे विधान सभा और संविधान सभा के सदस्य भी रहे। वे सामाजिक और धार्मिक सुधारों में विश्वास रखते थे और गीता के सिद्धांतों के पक्के अनुयायी थे। उन्होंने जनहित में अनेक शैक्षणिक, चिकित्सा और धार्मिक संस्थाएं बनाई। उनका 18 नंवबर 1979 को देहावसान हो गया। **

# ए.एम.एम. मुरुगप्पा चेट्टियार

*भारत सरकार ने ए.एम.एम. मुरुगप्पा चेट्टियार के सम्मान में सर्वप्रथम 1 अक्टूबर 2005 को 5 रुपये की 6 लाख डाक टिकटें जारी की।*

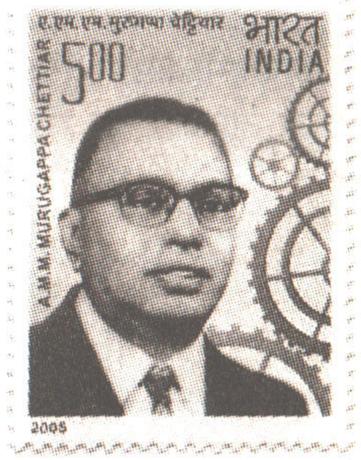


श्री ए.एम.एम. मुरुगप्पा चेट्टियार भारत के अग्रणी उद्यमी और लोकहितैषी थे, स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्र के आर्थिक और औद्योगिक ढांचे के निर्माण में उनकी अविस्मरणीय भूमिका रही।

दीवान बहादुर ए.एम.एम. मुरुगप्पा चिट्टियार के सुपुत्र, श्री ए.एम.एम. मुरुगप्पा चेट्टियार का जन्म 22 जनवरी, 1902 में तमिलनाडु के रामनाड जिले में पल्लतुर में हुआ। अल्पावस्था से ही श्री ए. एम. एम. मुरुगप्पा चेट्टियार में अनोखी परिपक्वता और व्यवसायिक सूझ बूझ थी। उन्होंने उन दिनों भारत में हल्के और मध्यम इंजीनियरिंग उद्योगों को प्रोन्नत करने के महत्त्व को पहचाना और इसी दृष्टिकोण के फलस्वरूप ही विख्यात ब्रिटिश ग्रुप, मै. ट्यूब इन्वेस्टमेंट लि., बरमिंघम इंगलैण्ड के सहयोग से जानी-मानी ट्यूब इन्वेस्टमेंट्स इंडिया लि. की स्थापना की। उनके टी.आई. मैटल सेक्शन, राइट सैडल्स ऑफ इंडिया, टी. आई. डॉयमन्ड चेन लिमिटेड और टी.आई. मिलर लिमिटेड ने दुनिया के प्रसिद्ध ब्रांडों जैसे हरक्युलिस, फिलिप्स और बी.एस.ए. साइकिल्स, बाइसिकल पुर्जों, इलैक्ट्रिक रेजिस्टेंस, वेल्डिड ट्यूब्स, बाइसिकल और इंडस्ट्रियल चेन, डॉयनमो लैम्प आदि के उत्पादन में उल्लेखनीय योगदान दिया। श्री ए. एम. एम. मुरुगप्पा चेट्टियार द्वारा विकसित एक अन्य सुनियोजित उद्योग ब्रिटेन की कारबोरेंडम कम्पनी लिमिटेड के सहयोग से चेन्नई में मै. कारबोरेंडम यूनिवर्सल लिमिटेड स्थापित की। जहां घिसने वाले और पीसने वाले पत्थरों का उत्पादन होता है। उन्होंने कोरोमंडल इंजीनियरिंग कम्पनी लिमिटेड जैसे कई अन्य औद्योगिक उद्यमों की शुरूआत करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये उद्योग संयुक्त रूप से घिसाई, भवन-निर्माण सामग्री, इंजीनियरिंग, फार्म इनपुट, खाद्य संस्करण, वित्तीय सेवाएं, विपणन सेवाएं, पौधारोपण, चीनी, जैव-उत्पादन और रसायनों आदि विभिन्न क्षेत्रों में व्यवसायिक गतिविधियां चला रहे हैं और इन उद्योगों ने प्रत्यक्ष रूप से 28,000 से अधिक लोगों को रोजगार प्रदान किया है।

श्री ए. एम. एम. मुरुगप्पा चेट्टियार को कई औद्योगिक, वाणिज्यिक और शैक्षणिक संस्थाओं के निदेशक के पद से सम्मानित किया गया। वे अखिल भारतीय





तकनीकी शिक्षा परिषद, मद्रास विश्वविद्यालय के सीनेट के सदस्य और सदर्न इंडिया चैंबर ऑफ कॉमर्स के अध्यक्ष रहे। वे पहले भारतीय थे जिनको फेडरेशन ऑफ इंडियन चैम्बर ऑफ कॉमर्स एण्ड इंडस्ट्री का अध्यक्ष चुना गया।

उनमें अपने देशवासियों विशेषतः गरीबों और जरूरतमंदों के प्रति सेवा की गहन भावना भरी थी। इसके प्रयोजनार्थ उन्होंने ए. एम. एम. धर्मार्थ ट्रस्ट (अब ए.एम.एम. फाउन्डेशन) की स्थापना की। यह ट्रस्ट ए. एम. ए. अस्पताल, मुरुगप्पा चेट्टियार मेमोरियल पॉलीटेक्निक, सर रामास्वामी मुदलियार हायर सेकेंडरी स्कूल, वेल्लयन चेट्टियार हायर सेकेंडरी स्कूल, सर इवान स्टेडफोर्ड अस्पताल आदि विभिन्न संस्थाओं की स्थापना एवं प्रचालन का दायित्व संभाले हुए है।

भारतीय उद्योग और वाणिज्य के क्षेत्र में अपनी अमिट छाप छोड़ने के उपरांत श्री ए. एम. एम. मुरुगप्पा चेट्टियार का 1965 में निधन हो गया।

**

# जवाहरलाल दर्डा

*भारत सरकार ने जवाहरलाल दर्डा के सम्मान में सर्वप्रथम 2 दिसम्बर 2005 को 5 रुपये की 6 लाख डाक टिकटें जारी की।*

श्री जवाहरलाल दर्डा का जन्म 2 जुलाई 1923 को महाराष्ट्र में यवतमाल जिले के बभलगांव ग्राम में हुआ। उनके पिताजी का नाम अमीलचन्द और माता जी का नाम श्रीमती कुसुमबा था। 17 वर्ष की अल्पायु में ही वे स्वतंत्रता संग्राम में शामिल हो गए। उन्होंने 400 मील लंबी पदयात्रा भी की। तथा 1942 में 'भारत छोड़ो' आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया जिसके चलते उन्हें बंदी बनाया गया। श्री जवाहरलाल दर्डा एक वरिष्ठ स्वतन्त्रता सेनानी और एक समर्पित पत्रकार थे जिन्होंने महाराष्ट्र में लोकोन्मुखी पत्रकारिता की नींव रखी। उन्होंने 1947 में यवतमाल से राष्ट्रीयता की भावना को प्रोत्साहित करने के लिए 'नवे जग' नामक साप्ताहिक समाचार-पत्र शुरू किया। इसके बाद 1952 में उन्होंने मराठी साप्ताहिक 'लोकमत' की शुरुआत की, जिसे 1971 में दैनिक कर दिया गया। आज यह अखबार महाराष्ट्र के 13 शहरों से निकलता है और अंग्रेजी तथा हिन्दी भाषाओं में भी प्रकाशित होता है।

श्री जवाहरलाल दर्डा को 1944 से 1956 तक यवतमाल जिला कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष चुना गया। विनोबा भावे के भूदान आंदोलन के दौरान यवतमाल जिले में काफी भूमि दान की गई। 1972 से 1995 तक वे महाराष्ट्र विधान परिषद के लिए चुने जाते रहे। ऊर्जा, उद्योग, सिंचाई, स्वास्थ्य, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति, खेल-कूद, युवा मामले, कपड़ा और पर्यावरण मंत्री रहते हुए उन्होंने महाराष्ट्र में कुशल प्रशासन के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये।

श्री जवाहरलाल दर्डा ने राज्य में सहकारी और कृषि से जुड़े आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया। उन्होंने अमोलचंद दर्डा महाविद्यालय की स्थापना की, जो विदर्भ क्षेत्र में अनेक कॉलेजों और अन्य शिक्षा संस्थानों का संचालन करता है। वे महाराष्ट्र राज्य गृह वित्त निगम के अध्यक्ष भी रहे।

'बाबू जी' के नाम से विख्यात श्री जवाहरलाल दर्डा ने गरीबों और दलितों के उत्थान के लिए कारगर कदम उठाए। ऊर्जा क्षेत्र में विकास को गति प्रदान करने के लिए उन्होंने नागपुर के नजदीक कोराडी ताप बिजलीघर की स्थापना की। उनकी गहरी दिलचस्पी के परिणामस्वरूप ही उनके समय में एक नई औद्योगिक नीति अस्तित्व में आई। उन्हीं के प्रयासों से महाराष्ट्र को भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रमुख स्थान मिला और वे 'विकास पुरुष' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

25 नवम्बर, 1997 को उन्होंने मुंबई में अंतिम सांस ली। रचनात्मक सामाजिक सेवा के उनके आदर्श आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणास्रोत बने रहेंगे।

**





# लाला दीन दयाल

*भारत सरकार ने लाला दीन दयाल के सम्मान में सर्वप्रथम 11–11–2006 को 5 रुपये की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।*

लाला दीन दयाल का जन्म 1844 में मेरठ के नजदीक सरधना में हुआ था। रुड़की के थॉमसन्स सिविल इंजीनियरिंग कॉलेज में शिक्षा ग्रहण करने के बाद 1866 में वे इंदौर में निर्माण विभाग के सचिवालय में एस्टीमेटर तथा ड्राफ्ट्समैन बन गए। इसके बाद उनकी फोटोग्राफी के प्रति रुचि उत्पन्न हुई। मध्य भारत के गवर्नर जनरल के एजेंट सर हेनरी डैली ने उन्हें काफी प्रोत्साहित किया और 1875 में उन्होंने लाला दीन दयाल को वेल्स के राजकुमार की शाही यात्रा के दौरान फोटो लेने का कार्य सौंपा। उनकी फोटो कला से प्रभावित हुए सर हेनरी उन्हें अपने साथ बुंदेलखंड की यात्रा पर ले गए। 1882-83 में दीन दयाल ने तत्कालीन एजेंट सर लेपेन ग्रिफिन के साथ बुंदेलखंड का पुनः दौरा किया। ग्वालियर, खजुराहो, रीवा और सांची के महलों, किलों और मंदिरों की उनकी 89 तस्वीरों को ऑटोटाइप कार्बन प्रणाली से बेहतरीन ढंग से पुनः विकसित कर सर लेपेन ग्रिफिन की 'फेमस मॉन्यूमेन्ट्स ऑफ सेंट्रल इंडिया' हेतु तैयार किया गया। लाला दीन दयाल को वाइसरॉय लॉर्ड डफरिन और लेडी डफरिन की तस्वीरें लेने का अवसर मिला और उन्हें महामहिम वाइसरॉय के फोटोग्राफर के पद पर नियुक्त किया गया। उन्होंने जल्दी ही सरकारी सेवा से इस्तीफा दे दिया और पूर्णकालिक फोटोग्राफर हो गए। उनकी ख्याति दिनों-दिन बढ़ने लगी और जल्दी ही हैदराबाद के निजाम मीर महबूब अली खान ने उन्हें न केवल शाही फोटोग्राफर नियुक्त किया बल्कि 'राजा मुसव्विर जंग' की उपाधि से भी विभूषित किया। 1897 में लाला दीन दयाल को रॉयल वारंट (शाही फरमान) प्रदान कर उन्हें साम्राज्ञी महारानी विक्टोरिया का फोटोग्राफर नियुक्त किया गया।

उन्होंने इंदौर, सिकंदराबाद और बंबई में स्टूडियो बनाए। 1893 में भारत दर्शन की उनकी प्रदर्शनी को शिकागो में वर्ल्ड कोलंबियन एक्सपोजिशन में विशेष पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसके बाद उन्हें जयपुर, कलकत्ता, लंदन और पूना में हुई विभिन्न फोटो प्रदर्शिनियों में अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए। उन्होंने भारत के कोने-कोने की यात्रा की और सभी महत्त्वपूर्ण दर्शनीय स्थलों में घूमे और 6000 से अधिक तस्वीरों की श्रृंखला का संग्रहण किया, जो संभवतः उस समय के व्यवसायिक व गैर व्यवसायिक किसी भी एक फोटोग्राफर द्वारा जुटाया सबसे बड़ा संग्रह था। उनकी खींची अधिकतर तस्वीरें नई दिल्ली स्थिति इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र में मौजूद हैं। 5 जुलाई, 1905 को 61 वर्ष की आयु में बंबई में निधन हो गया, परन्तु देश की अगली पीढ़ियों के लिए कलात्मक चित्रों का विपुल कोष छोडकर गये। उनकी सजीव तस्वीरें 19वीं सदी के भारत की मनोहर विपुलता, सौम्य वैभव और गरिमामय आकर्षण की दुर्लभ सचित्र झांकियां प्रस्तुत करती हैं। प्रतिष्ठित अभिजात्यवर्ग, हुक्काधारियों, शाही महलों, शाही शिकार, जुलूसों, हाथी सवारी आदि को अपनी तस्वीरों में उतारकर उन्होंने उस दौर के स्वर्णिम क्षणों को सदा के लिए संजो लिया था।

**

# डॉ. आर.एम. अलगप्प चेट्टियार

*भारत सरकार ने डॉ. आर.एम. अलगप्प चेट्टियार के सम्मान में सर्वप्रथम 6 अप्रैल 2007 को 5 रूपये की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।*

डॉ. आर.एम. चेट्टियार का जन्म 6 अप्रैल, 1909 को शिवगंगा जिले के कोट्टैयूर में हुआ। प्राथमिक शिक्षा उन्होंने कराईकुड़ी के एसएमएस विद्याशाला से ग्रहण की और मद्रास (अब चैन्नई) के प्रेसिडेंसी कॉलेज से साहित्य में एम.ए. किया।

चेट्टियार शिक्षा में उच्च कोटि के प्रतिभाशाली छात्र थे। वे 1930 में 21वर्ष की आयु में लंदन के चार्टर्ड बैंक में पहले भारतीय थे जो प्रशिक्षण प्राप्त करने गये थे। इसके तुरंत बाद वे मिडल टेंपल, इंग्लैंड के बार के लिए उत्तीर्ण हो गए और 'बार-एट-लॉ' बन गए जिससे चेट्टिनाड क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की। वे साहसी प्रकृति के व्यक्ति के और क्रॉयडॉन इंग्लैंड से उन्हें पायलट का प्रमाण-पत्र मिला। श्रेष्ठता के लिए उनकी लगन पक्की थी। मद्रास और अन्नामलाई, दोनों विश्वविद्यालयों से उन्हें डॉक्ट्रेट की मानद उपाधियां प्राप्त हुईं। ब्रिटिश हुकूमत ने भी उद्यमी के रूप में उनके शानदार रिकॉर्ड का सम्मान किया और 1945 में 37 वर्ष की आयु में नाइट की उपाधि प्रदान की। भारत की आजादी के बाद उन्होंने इस प्रतिष्ठित उपाधि का परित्याग कर दिया।

इस सर्वश्रेष्ठ शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद डॉ. चेट्टियार ने विदेशी शासन के आधीन नौकरी नहीं करने का फैसला लिया। देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए यहाँ उद्योग-धन्धों को स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक था इस दिशा में डॉ. चेट्टियार ने सर्वप्रथम कपड़ा उद्योग में कदम रखा। मलाया के रबर बागान, केरल के कपड़ा उद्योग, कलकत्ता की बीमा कंपनियां, बंबई के होटल, मद्रास के थियेटर, विकासशील शेयर दलाल कंपनी और एक निजी एअरलाइन आदि स्थापित करके एक बड़ा औद्योगिक एम्पायर तैयार किया।

भारत की स्वतंत्रता के बाद 1947 में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के उस आह्वान पर जिसमें उन्होंने उद्योगपतियों को देश में शिक्षा के प्रचार-प्रसार में सहायता प्रदान करने को कहा था। उन्होंने तुरंत ही विश्वविद्यालय से तत्कालीन कुलपति डॉ. ए. लक्ष्मणस्वामी मुदलियार से प्रेरणा पाकर और उन्हीं के कुशल मार्गदर्शन में अलगप्प प्रौद्योगिकी कॉलेज की स्थापना की गई और इसे मद्रास विश्वविद्यालय से संबद्ध किया गया। इस कॉलेज में रसायन इंजीनियरिंग, टेक्सटाइल इंजीनियरिंग और लेदर टेक्नॉलॉजी में स्नातक स्तर की शिक्षा प्रदान की





जाती थी। इसके बाद उदारपूर्वक दिए उनके दान के बल पर कराईकुडी में 1000 एकड़ के परिसर में अनेक शिक्षण संस्थान स्थापित हुए, जिसमें अलगप्प स्कूल शामिल थी, जहां बचचों को प्राथमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा प्रदान की जाती थी, अलगप्प पॉलीटेक्नीक, अलगप्प इंजीनियरिंग कॉलेज, अलगप्प आर्ट्स कॉलेज, अलगप्प टीचर्स कॉलेज, शारीरिक शिक्षा कॉलेज आदि प्रमुख हैं। इन सभी संस्थानों ने तमिलनाडु सरकार द्वारा 1985 में अलगप्प विश्वविद्यालय की स्थापना के आधार पर कार्य किया।

अनेक शिक्षण संस्थानों की स्थापना के अतिरिक्त डॉ. चेट्टियार ने एक इंजीनियरिंग कॉलेज की स्थापना के लिए अन्नामलाई विश्वविद्यालय को भी उदारतापूर्वक दान किया। महान गणितज्ञ रामानुजम की स्मृति में चेन्नई स्थित रामानुजम इंस्टीट्यूट ऑफ मैथमेटिकल साइंसेस की स्थापना का विचार डॉ. अलगप्प चेट्टियार का ही था।

डॉ. चेट्टिया ने महात्मा गाँधी के कहने पर ''ठक्कर बाबा विद्यालय'' की भी स्थापना की, जिसका उद्घाटन स्वयं गाँधीजी ने किया था। त्रिचूर के नजदीक अलगप्पापुरम नामक टाउनशिप, एर्णाकुलम के महाराजा कॉलेज का देशी चिकित्सा अनुसंधान विभाग, त्रिवेंद्रम विश्वविद्यालय का तमिल शोध विभाग उनकी समग्र दृष्टि के प्रमाण हैं।

आर.एम. अलगप्प चेट्टियार को 26 जनवरी, 1956 को भारत के राष्ट्रपति ने पद्म भूषण से अलंकृत किया। मात्र दो दशकों के अंतराल में उन्होंने एक सफल उद्योगपति और प्रबुद्ध अकादमिक के तौर पर अपनी बहुमुखी प्रतिभा को बखूबी सिद्ध किया और परिवर्तन का ऐसा दर्शन प्रस्तुत किया जिसने कराईकड़ी जंगल-झाड़ से शिक्षा के प्रमुख केन्द्र में परिवर्तित कर दिया। प्रारब्ध अपनी दिशा स्वयं तय करता है समाज और देश बहुमुखी होनहार व्यक्ति को उसने अधिक समय तक कार्य करते रहने दिया। उनकी बहुत ही अल्पायु क्रेवल 48 वर्ष के होने पर 5 अप्रैल 1957 को बीमारी के कारण देहावसान हुआ।

**

# डाक टिकट

## अग्रवालवैश्य समाज की महान विभूतियां
## जिनके सम्मान में भारत सरकार द्वारा समय–समय पर डाक टिकट जारी किए गए

| क्र. सं. | विभूतियां | जन्म | अवसान | कीमत | टिकट जारी करने की तिथि | प्रसारित संख्या |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | राष्ट्रपिता महात्मा गांधी | 2.10.1869 | 30.1.1948 | 1½ आना<br>3½ आना<br>12 आना व 10/– रु. | 15.8.1948 | सर्वप्रथम जारी किया और अभी तक निरंतर प्रकाशित हो रहे हैं |
| 2. | बा कस्तूरबा गांधी | अप्रैल 1869 | 22.2.1944 | –/15 पैसे | 22.2.1964 | 20,00,000 |
| 3. | लाला लाजपत राय | 2.10.1865 | 16.11.1928 | –/ 15 पैसे | 28.1.1965 | 20,00,000 |
| 4. | डॉ. भगवान दास | 12.1.1869 | 18.9.1958 | –/ 20 पैसे | 20.1.1969 | 30,00,000 |
| 5. | बा–बापू | 1869–1969 | | –/ 20 पैस | 2.10.1969 | 80,00,000 |
| 6. | सेठ जमनालाल बजाज | 4.11.1889 | 11.2.1942 | –/ 20 पैसे | 4.11.1970 | 30,00,000 |
| 7. | काशी विद्यापीठ (स्वर्ण जयंती के अवसर पर जारी) | | 1921–1971 | –/ 20 पैसे | 10.2.1971 | 30,00,000 |
| 8. | राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त | 3.8.1886 | 5.1.1964 | –/ 25 पैसे | 3.7.1974 | 30,00,000 |
| 9. | भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द्र | 9.9.1850 | 5.1.1885 | –/ 25 पैसे | 9.9.1976 | 30,00,000 |
| 10. | महाराजा अग्रसेन | आश्विन शुक्ल एकम प्रथम नवरात्र | | –/ 25 पैसे | 24.9.1976 | 80,00,000 |
| 11. | सर गंगाराम | 13.4.1851 | 10.7.1927 | –/ 25 पैसे | 4.9.1977 | 30,00,000 |
| 12. | डॉ. राममनोहर लोहिया | 23.3.1910 | 12.10.1967 | –/ 25 पैसे | 12.10.1977 | 30,00,000 |
| 13. | डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल | 27.11.1881 | 4.8.1937 | –/ 35 पैसे | 1981 | 20,00,000 |
| 14. | सेठ घनश्याम दास बिड़ला | 14.4.1894 | 11.6.1983 | –/ 50 पैसे | 11.6.1984 | 20,00,000 |
| 15. | डॉ. राजा सर एम.ए. मुत्तैया चेट्टियार | 5.8.1905 | 12.5.1984 | –/ 60 पैसे | 21.12.1987 | 10,00,000 |
| 16. | मोहन लाल सुखाड़िया | 31.7.1916 | 2.2.1982 | –/ 60 पैसे | 2.2.1988 | 10,00,000 |
| 17. | राष्ट्र रत्न बाबू शिवप्रसाद गुप्त | 28.6.1883 | 24.4.1944 | –/ 60 पैसे | 28.6.1988 | 10,00,000 |
| 18. | श्री प्रकाश | 3.8.1890 | 23.6.1971 | 2 रुपये | 3.8.1991 | 6,00,000 |
| 19. | जय शंकर प्रसाद | 31.1.1890 | 14.10.1937 | 2 रुपये | 16.9.1991 | 6,00,000 |
| 20. | हनुमान प्रसाद पोद्दार | 17.9.1892 | 22.3.1971 | 1 रुपया | 10.9.1992 | 6,00,000 |
| 21. | कस्तूरबा ट्रस्ट | | | 1 रुपया | 22.2.1996 | 10,00,000 |
| 22. | श्यामलाल गुप्त | 16.9.1896 | 10.8.1977 | 1 रुपया | 4.3.1997 | 4,00,000 |
| 23. | राममनोहर लोहिया पुनः प्रकाशित | 23.3.1910 | 12.10.1967 | 1 रुपया | 23.3.1997 | 4,00,000 |
| 24. | संत कवि सुन्दर दास | 1653 | 1746 | 2 रुपये | 8.11.1997 | 4,00,000 |
| 25. | डॉ. जगदीश चन्द्र जैन | 1909 | | 2 रुपये | 28.1.1998 | 4,00,000 |
| 26. | आचार्य तुलसी | 20.10.1914 | 23.6.1997 | 3 रुपये | 20.10.1998 | 14,00,000 |
| 27. | हिन्दुस्तान टाइम्स (75 वीं वर्षगांठ) | 1924–1999 | | 15 रुपये | 16.12.1999 | 10,00,000 |
| 28. | पोट्टी श्रीरामुलु | 1901 | 1952 | 3 रुपये | 16.3.2000 | 4,00,000 |
| 29. | डी.एन. जटिया | 1930 | 2000 | 15 रुपये | 11.12.2000 | 50,000 |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 30. भामाशाह | 28.6.1547 | 11.1.1600 | 3 रुपये | 31.12.2000 | 4,00,000 |
| 31. जैन प्रतीक | | | 3 रुपये | 6.4.2001 | 4,00,000 |
| 32. चन्द्र गुप्त मौर्य | | | 4 रुपये | 21.7.2001 | 4,00,000 |
| 33. बृजलाल बियाणी | 6.12.1896 | 27.9.1968 | 4 रुपये | 22.6.2002 | 4,00,000 |
| 34. बाबू गुलाबराय | 17.1.1888 | 13.4.1963 | 5 रुपये | 22.6.2002 | 4,00,000 |
| 35. आनन्द ऋषिजी | 25.7.1900 | 28.5.1992 | 4 रुपये | 9.8.2002 | 4,00,000 |
| 36. नरेन्द्र मोहन | 10.10.1934 | 28.9.2002 | 5 रुपये | 14.10.2003 | 4,00,000 |
| 37. डॉ. इन्द्र चन्द्र शास्त्री | 27.5.1912 | 3.11.1986 | 5 रुपये | 27.5.2004 | 4,00,000 |
| 38. ज्योति प्रसाद अगरवाला | 17.6.1903 | 17.1.1951 | 5 रुपये | 17.6.2004 | 4,00,000 |
| 39. आचार्य भिक्षू | वि.स.1783 | वि.स.1860 | 5 रुपये | 30.6.2004 | 4,00,000 |
| 40. वालचंद हिराचंद | 23.11.1882 | 8.4.1953 | 5 रुपये | 23.11.2004 | 7,00,000 |
| 41. पदमपत सिंहानिया | 3.2.1905 | 18.11.1979 | 5 रुपये | 3.2.2005 | 6,00,000 |
| 42. ए.एम.एम. मुरूगप्पा चेट्टियार | 22.1.1902 | 1965 | 5 रुपये | 1.10.2005 | 6,00,000 |
| 43. जवाहर लाल दर्डा | 2.7.1923 | 25.11.1997 | 5 रुपये | 2.12.2005 | 6,00,000 |
| 44. लाला दीनदयाल | 1844 | 5.7.1905 | 5 रुपये | 11.11.2006 | 4,00,000 |
| 45. डॉ. आर.एम. अलगप्प चेट्टियार | 6.4.1909 | 5.4.1957 | 5 रुपये | 6.4.2007 | 4,00,000 |

आइये हम भी ऐसे महापुरुषों से प्रेरणा लेकर समस्त देश व समाज के उत्थान तथा प्रगति के पथ पर सदैव तत्पर रहें।

।। इति ।।

# लेखक का परिचय

सूबेसिंह गुप्ता

चन्द्रमोहन गुप्ता

लेखक ने "बाल अग्र-मंजूषा" के तीन भाग केवल समाज की सेवा के उद्देश्य से तैयार किये हैं। इन पुस्तकों से उसे कोई कमाई की आशा नहीं है। वे चाहते हैं कि बालक/बालिकायें 'अग्रसेन, अग्रोहा और अग्रवाल' के बारे में ज्ञान प्राप्त करें, उनके आदर्शों को ग्रहण करें और जीवन सफल बनाऐं। लेखक सामाजिक कार्यों में व्यक्तिगत सम्पर्क को विशेष महत्व देते रहे हैं। जब भी जिस संस्था से जुड़े, सदस्यों को पिकनिक और पर्यटन पर अवश्य ले जाते ताकि उनके परिवार आपस में मिलें और पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित हो। लेखक परस्पर सहयोग को भी बहुत आवश्यक मानते हैं। इसके लिए उन्होंने तीन सहकारी संस्थाऐं ए.आई.आई.एम.एस. ईम्पलाइज को.आ. ग्रुप हाऊसिंग सोसायटी लि., एन.बी.सी.सी. ईम्पलाइज थ्रिफ्ट एण्ड क्रेडिट सोसायटी लि. और जयश्री अग्रसेन अरबन थ्रिफ्ट एण्ड क्रेडिट सोसायटी लि. स्थापित करने का गौरव प्राप्त किया। आप तीनों सहकारी समितियों में व्यक्तियों को लाये, संगठित होने की प्रेरणा दी और पंजीकरण कराकर सफलतापूर्वक चलाया। आपने पद का कभी लालच नहीं किया जब संस्था ठीक चलती दिखाई दी तो दूसरों को अवसर देने के उद्देश्य से छोड़ने में देर नहीं की।

**महाराजा अग्रसेन जयन्ती** – आश्विन शुक्ल एकम् प्रथम नवरात्रा
**महालक्ष्मी वरदान दिवस** – मगसर की पूर्णिमा

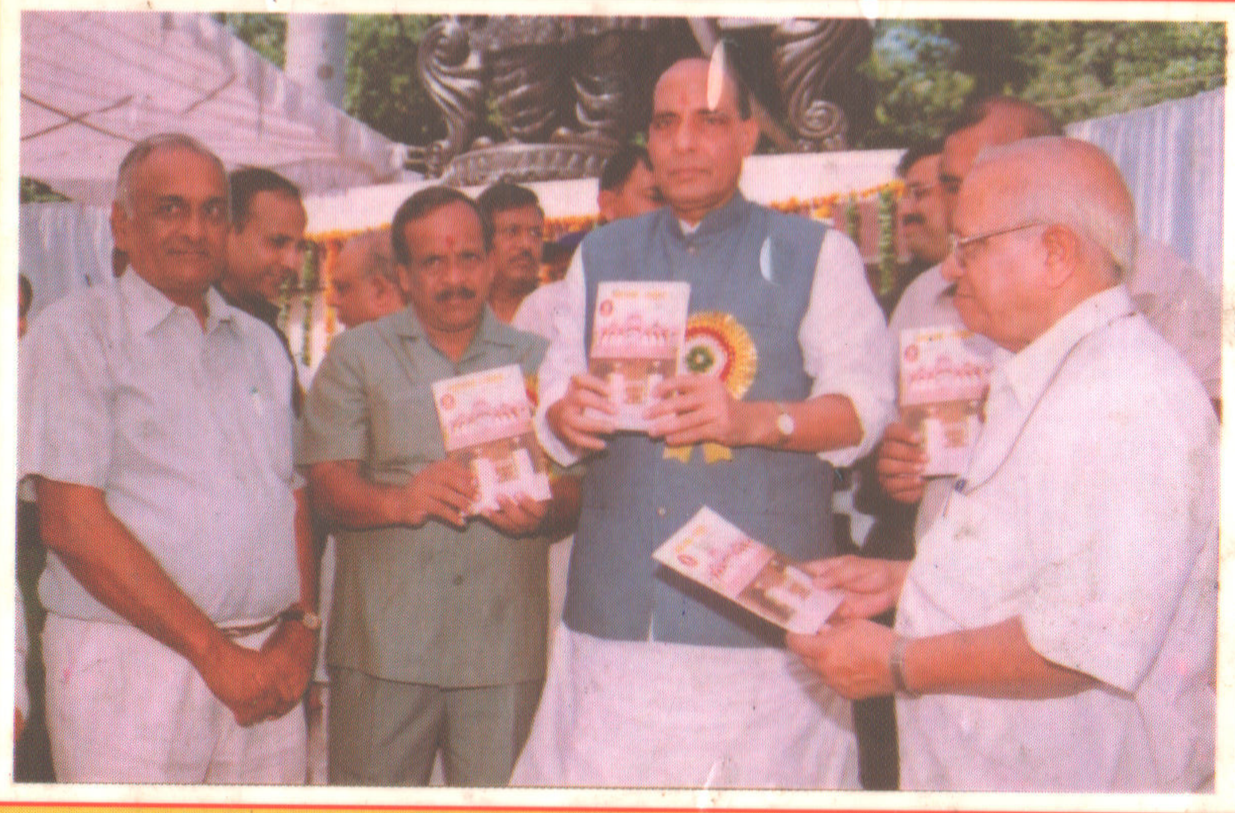

23 सितम्बर 2006 को महाराजा अग्रसेन पार्क कश्मीरी गेट में अग्रसेन जयन्ती के पावन अवसर पर पधारे भाजपा अध्यक्ष श्री राजनाथ सिंह जी बाल अग्र-मंजूषा भाग-3 का विमोचन करते हुए। उनकी बाईं तरफ सर्वश्री जगदीश प्रसाद मोदी, डॉ. विष्णु चन्द्र गुप्ता तथा दाईं तरह सर्वश्री महेन्द्र गुप्ता, अनिल गोयल, मंगतराम सिंहल (उद्योग मंत्री, दिल्ली सरकार), कैलाश गोयल एवं लेखक एस.एस. गुप्ता।

ये पुस्तक आज के युवा बालक-बालिकाओं के लिये उपयोगी व जानकारी वर्धक है।

# राष्ट्र की वैश्य विभूतियाँ

( भारत सरकार ने जिन पर समय-समय पर डाक टिकट जारी किये )

सूबेसिंह गुप्ता ✦ चन्द्रमोहन गुप्ता

# राष्ट्र की वैश्य विभूतियाँ

( भारत सरकार ने जिन पर समय-समय पर डाक टिकट जारी किये )

सूबेसिंह गुप्ता ✦ चन्द्रमोहन गुप्ता